रवीन्द्र-साहित्य

छठा भाग

धन्यकुमार जैन

मूल्य सवा दो रुपया

रवीन्द्र-साहित्य

छठा भाग

अनुवादक
धन्यकुमार जैन

हिन्दी-ग्रन्थागार
पी-१५, कलाकार स्ट्रीट : कलकत्ता-७

रवीन्द्र-साहित्य

छठा भाग

शुभदृष्टि

कान्तिचन्द्रकी उमर कम है, फिर भी, स्त्री-वियोगके बाद उन्होंने दूसरी स्त्रीकी खोजका खयाल छोड़कर अपना सारा ध्यान पशु-पक्षियोंके शिकारमे लगा दिया है। लम्बा छरछरा कठिन किन्तु हलका शरीर है; दृष्टि तीक्ष्ण, बन्दूकका निशाना अचूक, पहनावा विलायती ढंगका। साथमे रहते हैं पहलवान हीरासिंह, छक्कनलाल और गाने-बजानेवाले उस्ताद खाँ साहब, मियाँ साहब; अकर्मण्य अनुचर-परिचरोंकी भी कमी नहीं।

अपने दो-चार शिकारी यार-दोस्तोंको साथ लेकर अगहनके महीनेमे आप नई दिग्घीकी नदीके किनारे शिकार करने पहुंचे। नदीमे दो बड़े-बड़े बोट पड़े थे, जिनमे वे आये थे, उन्हींमे रहते हैं। और भी तीन-चार नाव है, जिनमे नौकर-चाकर हैं; और वे गाँवका घाट घेरे बैठे हैं। गाँवकी बहू-बेटियोंका पानी भरना और नहाना-धोना लगभग बन्द है। सवेरेसे शाम तक बन्दूककी आवाजसे जल-स्थल काँपता रहता है, और जब रात पड़ती है तो उस्तादोंकी गलेबाजी तान-तम्बूरेका लट्ठ लिये गाँवकी नींदके पीछे पड़ जाती है।

एक दिन, सवेरे कान्तिचन्द्र बोटपर बैठ अपनी बन्दूककी नली अपने हाथसे साफ कर रहे थे; इतनेमें नजदीक ही बतककी बोली सुनकर मुँह उठाया, तो देखा कि एक लड़की दोनों हाथोंसे दो जवान बतकोंको अपनी छातीसे लगाये घाटकी सीढ़ियोंपर उतर रही है। छोटी-सी नदी है, कहीं धारा चालू है तो कहीं पानी जम गया है। लड़कीने दोनों बतकोंको पानीमें छोड दिया; और इस खयालसे कि कहीं वे काबूसे बाहर न चली जायँ, उनपर काफी सतर्क दृष्टि रखी। देखा कि वह उन्हे बड़े स्नेहसे घेरे रहनेकी कोशिशमें है। उसके रंगढंगसे यह बात साफ समझमें आ रही थी कि और-और दिन शायद वह अपनी बतकें यों ही पानीमें छोड़ दिया करती होगी, मगर आज शिकारियोंके डरसे वह उन्हे निश्चिन्त मनसे छोड़नेमें दुविधाती है।

लड़कीकी खूबसूरती बिलकुल नई और ताजा है; मानो विश्वकर्माने उसे अभी तुरत बनाकर छोड़ दिया हो। उमरका अन्दाज लगाना कठिन है। देह विकसित है, पर मुखड़ा ऐसा कोमल-कच्चा कि शायद दुनियाने अब तक उसे कहींसे भी जरा छुआ तक नहीं। खुद अपने बारेमें उसके पास अब तक कोई खबर ही नहीं पहुंची कि वह जवानीमें कदम रख चुकी है।

कान्तिचन्द्रने क्षण-भरके लिए बन्दूक साफ करनेके काममें ढील डाल दी। देखकर वह दंग रह गये। बहुत देर तक एकटक देखते रहे। ऐसी जगह ऐसा मुखड़ा देखनेको मिलेगा, इसकी उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी। और आश्चर्यकी बात है कि किसी राजाके रनिवासकी अपेक्षा यहीं यह चेहरा ज्यादा अच्छा

लगता है; ऐसा लगता है मानो चारों तरफ जो-कुछ भी दीख रहा है, सब इसी चेहरेकी शोभा बढ़ानेके लिए ही रची-गई रचना है। असलमें, सोनेकी फूलदानीकी अपेक्षा पेड़पर ही फूल ज्यादा शोभा देता है। बालिकाके पीछे शरतकी ओस और सवेरेकी मुलायम घामसे विकसित नदी-किनारेकी लम्बी-लम्बी चमकीली घास झिलमिला रही थी और सामने प्रभातकी धीमी मीठी हवासे नदीका पानी थिरक रहा था; और दोनोंके बीच खड़ी नवीनाके कोमल-सरल मुखड़ेको कान्तिचन्द्रकी मुग्धदृष्टि ऐसे देखने लगी जैसे उसके सामने किसी मायाविनीने आश्विनकी आसन्न आगमनीकी सुन्दरसे सुन्दर आनन्दच्छबि अंकित कर दी हो। मन्दाकिनीके किनारे तरुण पार्वती कभी-कभी इसी तरह हंस-शिशुओंको छातीसे लगाये घूमा-फिरा करती थी, कालिदास इस बातका उल्लेख करना भूल गये होंगे।

इतनेमें, अचानक वह लड़की डरसे काँप उठी और रुलासी-सी होकर झटपट दोनों बतकोंको छातीसे चुपटाकर दबी हुई आवाज़में चीखती हुई घाट छोड़कर चल दी। कान्तिचन्द्र इसका सबब जाननेके लिए बाहर निकल आये और देखा कि उन्हींका एक रसिक मुसाहिब महज मजे लेनेके नशेमें लड़कीको डरानेके लिए उसकी बतकोंकी ओर रीती बन्दूक ताने निशाना ठीक कर रहा है। कान्तिचन्द्रने पीछेसे उसकी बन्दूक छीन ली; और ताड़से उसके गालपर जोरका एक तमाचा जड़ दिया। अचानक रंगमें भंग हो गया और मुसाहिब साहब धप-से वहाँके वहीं बैठ गये। कान्ति बाबू बोटके भीतर वापस चले आये और बन्दूक साफ करने लगे।

कुतूहली कान्तिचन्द्रसे रहा न गया। वे किनारे आये और पेड़-पौधे-झाड़ियोंको पार करते हुए ऐसी जगह जाकर रुके जहाँ गाँवके किसी सुखी गृहस्थका घर था। देखा कि सामने खपञ्चियोंके वेड़ेसे घिरा हुआ विशाल आँगन है, जिसमें धानके गोलोंकी कतार इस बातका सबूत दे रही है कि घर श्री-सम्पन्न है। साफ-सुथरे गुहालघरके पास एक वड़का पेड़ है, उसके नीचे वैठी सवेरेकी वही लड़की अपने घायल पखेरूको छातीसे लगाये सिसकियाँ ले-लेकर रो रही है; और मिट्टीके गमलेके पानीमें अपना आँचल भिगो-भिगोकर उसकी चोंचमें निचोड़ रही है। और पास वैठी हुई पालतू बिल्ली उसकी पालथीपर आगेके दो पैर रखकर ऊपरको मुंह किये उस चिड़ियाकी ओर उत्सुक दृष्टिसे देख रही है; और, लड़की बीच वीचमे उसकी नाकपर तर्जनी तान-तानकर, उस लालची पशुके हदसे ज्यादा वढ़े हुए आग्रहका वड़ी खूबीके साथ दमन कर रही है।

गँवई-गाँवकी सुनसान दोपहरीमें, खुशहाल गृहस्थके साफ-सुथरे आँगनकी सुखपूर्ण शान्तिमे, कान्तिचन्द्र क्षण-भरके लिए अपनेको भूल-से गये; और उस करुण-मनोहर दृश्यका सजीव चित्र उनके हृदयपटपर कब अंकित हो गया, इसका उन्हे होश भी नहीं। उस कम पत्तेवाले पेडमेंसे धूप और छाया बालिकापर ऐसे पड रही थी जैसे एक दूसरेको छूना चाहती हो, पर छू नहीं पाती। पास ही सानीसे अफरी हुई हृष्टपुष्ट गाय अलसाई हुई देह लिये जमीनपर वैठी अपने सींग और पूंछसे पीठकी मक्खियाँ उड़ा रही है। बीच-बीचमे उत्तरी हवाका झोका खाकर बाँसके झाड ऐसे बोल-बोल उठते है जैसे आपसमें कानाफूसी कर रहे हों। आज सवेरे नदीके

किनारेके जंगलमें जो वनश्री-सी दीख रही थी, दोपहरकी निस्तब्ध प्रांगण-छायामे वही अब स्नेहसे भरी गृहलक्ष्मी-सी दिखाई देने लगी।

कान्तिचन्द्र बन्दूक हाथमे लिये सहसा इस बालिकाके सामने आकर अत्यन्त कुंठित और लज्जित-से हो पड़े। ऐसा लगा जैसे चोरीका माल समेत पकड लिये गये हों। भीतरसे उनका जी चाहने लगा कि किसी तरह इतनी कैफियत वे दे ही दें कि उनकी गोलीसे यह पखेरू घायल नहीं हुआ। और, कैसे बात छेड़ी जाय यह सोच ही रहे थे कि इतनेमे किसीने पुकारा, 'सुधा!' बालिका चौंक-सी गई। फिर आवाज आई, 'सुधा!' और तब वह जल्दीसे अपने घायल पखेरूको लिये हुए घरकी तरफ चल दी। कान्तिचन्द्र सोचने लगे, नाम बिलकुल ठीक ही रखा गया है, सुधा!

कान्ति बाबू लौट पडे, और अपने आदमीके जुम्मे बन्दूक सौंपकर थोडी देर बाद सदर रास्तेसे फिर उस घरके दरवाजेके सामने जा खड़े हुए। देखा कि अधेड उमरका एक ब्राह्मण बरंडेमे बठा 'हरिभक्ति-विलास' का पाठ कर रहा है, सिर उसका मुंडा हुआ है, चेहरा शान्त और सौम्य। उनका मन भीतर-ही-भीतर महसूस करने लगा कि उस लड़कीके करुणापूर्ण चेहरेके साथ इस स्निग्ध गम्भीर प्रशान्त चेहरेका काफी मेल है।

कान्ति बाबूने उन्हे नमस्कार किया, और बोले—"प्यास लगी है पंडितजी महाराज, एक लोटा पानी मिल जाता तो—"

पंडितजी जल्दीसे उठ खड़े हुए; और अभ्यर्थनाके साथ उन्हे

बिठाया। और, तुरत भीतर जाकर काँसेकी रकाबीमें थोड़ेसे बतासे और एक लोटेमें पानी लेकर अतिथिके सामने आ खड़े हुए।

पानी पी चुकनेके बाद ब्राह्मणने उनसे परिचय पूछा। कान्तिचन्द्रने परिचय देते हुए कहा—"महाराज, आपके किसी काम आ सकूँ तो मैं अपनेको धन्य समझूंगा।

नवीनचन्द्र बन्द्योपाध्यायने कहा—"बेटा, मेरा और क्या काम है जो बताऊँ, हाँ, मेरी एक लड़की है, सुधा, उसकी उमर ब्याह लायक हो चुकी, अब उसे किसी सत्पात्रको दान कर दूं तो बस फिर मुझे संसारके सब ऋणोंसे उऋण ही समझो। आसपास कहीं कोई अच्छा लड़का नहीं मिल रहा है; और इतनी अब सामर्थ्य नहीं रही कि दूर जाकर लड़का तलाश करता फिरूं। घरमे श्रीगोपीनाथजीकी मूर्ति बिराजती हैं, उन्हें छोड़कर कहीं जानेको जी भी नहीं करता।"

कान्तिचन्द्रने कहा—"आप नावपर मुझसे मिले तो इस विषयमें आपसे बातचीत हो।"

इ र कान्तिचन्द्रके आदमियोंने बन्द्योपाध्यायजीकी कन्याके बारेमें जिस किसीसे भी कुछ पूछा-ताछा, उसके मुंहसे यही सुना कि 'ऐसी साक्षात् लछमी-सी बिटिया शायद ही किसीकी हो।'

दूसरे दिन, पंडितजी जब बोटपर पहुंचे तो कान्तिचन्द्रने उन्हे पॉव छूकर प्रणाम किया, और जताया कि वे खुद ही उस कन्यासे विवाह करनेको राजी हैं। इस अचिन्तनीय सौभाग्यके आभाससे भक्त ब्राह्मणकी ऑखें भर आईं, कंठ रुक आया, कुछ देरके लिए उनके मुँहसे कोई बात ही नहीं निकली।

सोचने लगे, इसमे कुछ गलतफहमी तो नहीं है; और बोले—"मेरी लड़कीसे तुम विवाह करोगे ?"

कान्तिने कहा—"आप अगर राजी हों तो मै तैयार हूं।"

"सुधाके साथ ?"

"जी हाँ।"

"उसे देख तो लो पहले—"

कान्तिने इस ढंगसे जवाब दिया कि जैसे सुधाको उसने पहले कभी देखा ही न हो, बोले—"अभी क्या जरूरत है, शुभदृष्टिके समय एकसाथ ही देख लूँगा।"

नवीनचन्द्रने गद्‌गद्‌कंठसे कहा—"सुधा मेरी बड़ी सुशील लडकी है, रसोई-पानी घर-गृहस्थीके काममें अद्वितीय ही समझो। जब कि तुम बगैर देखे ही उससे ब्याह करनेके लिए तैयार हो तो मेरा भी अन्त.करणसे यह आशीर्वाद है कि मेरी सुधा पतिव्रता और सती लक्ष्मीके रूपमे चिरकाल तक तुम्हारी सेवा करती रहे। कभी एक क्षणके लिए भी वह तुम्हारे जीवनमे अशान्ति या परितापका कारण न बने।"

कान्ति बाबूने अपनी इच्छा जाहिर की कि वे अब ज्यादा देर करना नहीं चाहते।

माघके महीनेमे ही ब्याह होना तय हो गया।

मजूमदारोंके पुराने पक्के मकानमे ब्याहकी तैयारियाँ हुईं। यथासमय बारात आई; और, दूल्हा हाथीपर चढ़कर मशाल और गाजे-बाजेके साथ दरवाजेपर आ पहुंचा।

शुभदृष्टिके समय दूल्हाने दुलहिनके मुंहकी ओर देखा। पर

ब्याहकी पोशाकमे लिपटी हुई सुधाको उसके चन्दन-चर्चित मोहरी-शुदा झुके हुए चेहराको वे ठीक तौरसे देख न सके। पुलकित और उद्वेलित हृदयके आनन्दमे आँखें मानो चौंधिया गई।

सुहागरात मनाई गई। मुहल्लेकी सरकारी दादीने जब दूल्हाके हाथसे जबरदस्ती दुलहिनका घूंघट खुलवा दिया, तो कान्तिचन्द्र अचानक चौंक पड़े।

यह तो वो लड़की नहीं है! सहसा छातीमेसे एक काली विजली-सी बाहर निकली और उनके सिरपर टूट पड़ी। क्षणमे सुहागरातकी सुख-शय्या कॉटे-सी चुभने लगी, मनोहर सुहाग-कुटीरके सारेके सारे प्रदीप बुझ-से गये, चारों तरफ अन्धकार छा गया। और अंधेरेकी उस बाढ़ने नववधूके मुखड़ेपर भी स्याही-सी पोत दी।

कान्तिचन्द्रने मन-ही-मन प्रतिज्ञा-सी कर ली थी कि दूसरा ब्याह वे हरगिज न करेंगे। उनका भाग्य उस प्रतिज्ञाको इस तरह, एक अद्भुत परिहासके साथ, तोड़-फोड़कर चकनाचूर कर देगा, इसकी उन्होंने स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की थी। कितने अच्छे-अच्छे सम्बन्ध आये और उन्होंने उनकी कुछ भी परवाह नहीं की, मित्रोंने कितने सानुनय अनुरोध किये और वे दृढताके साथ अपनी प्रतिज्ञापर जमे रहे; ऊँचेसे ऊँचे खानदानोंसे रिश्तेदारीका आकर्षण, अर्थ-प्राप्तिका प्रलोभन, रूपका मोह सब-कुछ ठुकरानेके बाद अन्तमें हुआ यह कि किसी एक अनजान गँवई-गाँवमें, कीच काई शुदा नहरके किनारे, जंगलमे, एक अज्ञात दरिद्र ब्राह्मणके घर इतनी बड़ी विडम्बना! समाजमे, मित्र-मंडलीमे, रिश्तेदारीमे आखिर वे कैसे मुंह दिखायेंगे।

पहले तो ससुर साहबपर गुस्सा आया, धोखेबाज पाखंडीने दिखाई कोई लड़की और ब्याह दी दूसरी ही लडकी ! पर बादमे विचारा तो खुद ही खयाल करने लगे, उन्होंने तो व्याहके पहले लड़की देखनेका प्रस्ताव किया था, पर उन्हींने मनाही कर दी तो उनका क्या दोष ? 'अपनी ही बुद्धिकी कमीसे इतनी बड़ी ठगईमे फँसे हैं तो अब उसे जाहिर न करना ही अच्छा' समझकर वे बातको चुपचाप दबा गये।

खैर, दवा तो किसी तरह गटक गये, पर मुँहका जायका बिलकुल बिगड़ गया। सुहागरातका हँसी-मजाक, दुलहिनकी सहेलियोंकी छेडखानी, साली-सरहजोंका जमघट, कुछ भी उन्हे न सुहाया। अपने ऊपर और सर्वसाधारण लोगोंपर उन्हें इतना गुस्सा आने लगा कि बदनमें आग-सी जलने लगी।

इतनेमें, उनके पास बैठी हुई दुलहिन दबी-हुई और डरी-हुई आवाजके साथ चौंक उठी। अचानक न-जाने कहाँसे एक खरगोशका बच्चा आया और उसकी गोदके ऊपरसे निकल गया। दूसरे ही क्षण उस दिनकी वह लड़की खरगोश-जादेका पीछा करती हुई वहाँ आ धमकी और उसे पकड़कर अपने गालोंसे लगाकर दायें-बायें घूमती हुई उसे अत्यन्त स्नेहके साथ खूब-खूब प्यार करने लगी। 'अरे अरे, पगली आ गई !'—कहते हुए सबने उसे चले जानेका इशारा किया। पर उस वन्दीने किसीके कहने-सुननेकी जरा भी परवाह न की, दूल्हा-दुलहिनके बीचमे ऐन-सामने जाकर जमके बैठ गई और महज बच्चोंकी तरह 'क्या हो रहा है' कुतूहलके साथ देखने लगी। घरकी किसी नौकरानीने उसे

पकड़कर उठानेकी कोशिश की तो दूल्हा बोल उठा—"रहने दो, रहने दो, बैठी रहने दो।"

लडकीसे पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

उसने कुछ जवाब नहीं दिया, सिर्फ हिलने लगी। कमरेकी सारीकी सारी तरुणियाँ ठहाका मारकर हँस पडीं।

कान्तिचन्द्रने फिर पूछा—"तुम्हारी बतकें अब कितनी बड़ी हो गईं ?"

लडकी बगैर किसी सङ्कोचके चुपचाप बैठी दूल्हाके चेहरेकी ओर देखने लगी।

हतबुद्धि कान्तिचन्द्रने हिम्मतके साथ फिर पूछा—"तुम्हारी उस चिड़ियाको आराम हो गया ?"

लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। तरुणियोंका झुंड इस तरह हँसने लगा जैसे दूल्हाकी खूब ही मिट्टी छँट रही हो और खूब बुद्धू बनाया गया हो।

अन्तमें, पूछनेपर मालूम हुआ कि लड़की जनमकी बहरी और गूँगी है; और गाँवके पशु-पक्षी ही उसके साथी-संगी है। उस दिन 'सुधा'की बुलाहट सुनकर जो वह घरके भीतर चली गई थी वह महज एक आकस्मिक घटना है; और दूल्हेका अनुमान सिर्फ गलत ही नहीं बल्कि उसे 'ठोस बेवकूफी' भी कहा जा सकता है।

सुनकर कान्तिचन्द्र फिर भीतरसे चौंक उठे। जिससे वञ्चित रहनेसे संसारमें उनके लिए कोई भी सुख नहीं था, शुभ होनहारकी बदौलत उससे छुटकारा पाकर अपनेको वे धन्य समझने लगे।

जीजी

गाँवकी किसी-एक अभागिनीके अन्यायी, अत्याचारी पतिके कुकर्मोंकी विस्तृत व्याख्या करनेके बाद पड़ोसिन तारामतीने अत्यन्त संक्षेपमे अपनी राय जाहिर की—"ऐसे पतिके मुँहमे आग !"

सुनकर जयगोपाल बाबूकी स्त्री शशिकलाको बहुत ही बुरा लगा, और दुःख भी हुआ। उसने मुँहसे तो कुछ नहीं कहा, पर मन-ही-मन सोचने लगी कि पति-जातिके मुँहमे चुरटकी आगके सिवा और किसी प्रकारकी आग लगाना या उसकी कल्पना करना कम-से-कम स्त्री-जातिके लिए तो कभी भी किसी हालतमें शोभा नहीं देता।

शशिकलाको चुप देखकर कठिनहृदय ताराका उत्साह दूना बढ़ गया, वह बोल उठी—"ऐसे खसमसे तो जनम-जनम राँड़ भली !" और चटसे उठकर चल दी; सभा भङ्ग हो गई।

शशिकला सोचने लगी, पतिकी तरफसे ऐसे किसी कसूरकी वह कल्पना ही नहीं कर सकती जिससे उनके प्रति ऐसा कठोर भाव हो जाय। सोचते-सोचते उनके कोमल हृदयका साराका सारा प्रीतिरस अपने प्रवासी पतिकी तरफ उच्छ्वसित होकर दौड़ने लगा। पलंगपर जहाँ उसके पति सोते थे उस जगह दोनों बाँह पसारकर वह औंधी पड़ रही और बार-बार तकियेको छातीसे लगाकर चूमने लगी, तकियेमें पतिके माथेकी खुशबू महसूस

करने लगी ; और फिर दरवाजा बन्द करके बकसमेंसे पतिका एक बहुत पुराना फोटोग्राफ और चिट्ठियाँ निकालकर बैठ गई। उस दिनकी निस्तब्ध दोपहरी उसकी इसी तरह एकान्त कमरेमे, निर्जन चिन्ता, पुरानी स्मृति और विषादके आँसुओंमे बीत गई।

शशिकला और जयगोपालका दाम्पत्य कोई नया हो, सो बात नहीं। बचपनमे ब्याह हुआ था, और इस बीचमे कई बाल-बच्चे भी हो चुके है। दोनोंने बहुत दिनों तक एकसाथ रहकर अत्यन्त सहज-साधारण तौरपर दिन काटे है, किसी भी तरफसे अपरिमित प्रेमोच्छ्वासका कभी भी कोई लक्षण देखनेमें नहीं आया। लगभग सोलह साल तक लगातार एकसाथ रहनेके बाद, महज रोजगारके लिए उसके पतिको अचानक परदेस जाना पड़ा, और इस विच्छेदसे शशिके मनमें एक तरहका प्रबल प्रेमावेग जाग उठा। विरहके जरिये बंधनमे जितना ही खिचाव पड़ने लगा, कोमल हृदयमें प्रेमकी फाँस उतनी ही कड़ी होने लगी ; ढीली हालतमे जिसका अस्तित्व कभी मालूम ही नहीं पड़ा, अब उसका दर्द भीतरसे टीस मारने लगा।

इसीसे, इतने दिन बाद, इतनी उमरमे बच्चोंकी मा होकर शशी आज वसन्तकी दोपहरीमें निर्जन-घरमे विरह-शय्यापर पड़ी-पड़ी उन्मेषितयौवना नववधूका-सा सुख-स्वप्न देखने लगी। जो प्रेम अज्ञातरूपसे जीवनके सामनेसे बहा चला गया है, सहसा आज उसीके कलकल-गीतसे जागकर वह मन-ही-मन बहावसे उलटी तैरकर पीछेकी तरफ बहुत दूर पहुंचना चाहती है जहाँ सोनेकी नगरीमे कुञ्जवनोंकी भरमार है, प्रेमकी उन्मादना है। किन्तु, उस

अतीत सुख-सम्भावनामें पहुंचनेका अब उपाय क्या है, और जगह कहाँ है ? सोचने लगी, अबकी बार जब वह पतिको अपने पास पायेगी तब जीवनको नीरस और वसन्तको निष्फल हरगिज न होने देगी। कितने ही दिन कितनी ही बार उसने तुच्छ विषयोंपर बहस कर-करके, छोटी-छोटी बातोंपर कलह कर-करके पतिको परेशान कर डाला है, आज अनुतप्त चित्तसे एकान्त इच्छासे उसने सङ्कल्प किया कि आइन्दा वह कभी भी असहिष्णु न होगी, कभी भी उनकी राजीके खिलाफ न चलेगी, उनकी आज्ञाका पूरी तरह पालन करेगी, सब काम उनकी तबीयतके ही किया करेगी, प्रीतिपूर्ण विनम्र हृदयसे अपने पतिका बुरा-भला आचरण सब चुपचाप सह लिया करेगी ; कारण पति सर्वस्व हैं, पति प्रियतम हैं, पति देवता है। बहुत दिनों तक शशिकला अपने पिता-माताकी इकलौती लाडली बेटी रही है। उन दिनों जयगोपाल यद्यपि मामूली नौकरी किया करते थे, फिर भी भविष्यके लिए उसे कोई फिकर नहीं थी। गाँवमे जाकर राजसी ठाठसे रहनेके लिए उसके ससुरके पास काफी सम्पत्ति थी।

इस बीचमे बिलकुल ही असमयमें शशिकलाके पिता काली प्रसन्नके वृद्धावस्थामे एक लड़का पैदा हुआ। सच कहनेमे क्या है, पिता-माताके इस तरहके असामयिक असंगत आचरणसे शशिको मन-ही-मन बहुत ही दुःख हुआ, और जयगोपाल भी विशेष प्रसन्न न हो सके।

ज्यादा उमरमे बच्चा हुआ तो उसपर मा-बापके स्नेह और लाड़-प्यारका ठिकाना न रहा। उस नवागत छोटेसे दूध-पीते

निद्रातुर सालेने अपनी गैरजानकारीमे न-जाने कैसे अपने कमजोर हाथोंकी छोटी-छोटी मुट्ठियोंमे जयगोपालकी सारी आशाएँ जब पीसकर चकनाचूर कर दीं तब वह आसामके किसी चायके बगीचेमे नौकरी करने चल दिया।

सबने कहा-सुना कि पास ही कहीं नौकरी तलाश करके यहीं रहे तो अच्छा हो। लेकिन, चाहे सर्वसाधारणपर गुस्सा आ जानेसे हो या चाय-बगानकी नौकरीसे रातोंरात बड़े आदमी बननेकी आशासे हो, उसने किसीकी बातपर ध्यान नहीं दिया। शशिको बच्चोंके साथ मायके छोडकर वह तुरत आसाम चला गया। ब्याहके बाद पति-पत्नीमे यह पहला विच्छेद है।

इस घटनासे अपने नन्हेसे दुधमुँहे भाईपर शशिको बहुत गुस्सा आया। जो मनके अफसोसको मुंह खोलकर कह नहीं सकता उसीको गुस्सा ज्यादा आता है। छोटा-सा मानव-शिशु आरामसे माका दूध पीता और आँख मीचकर बेफिक्र सोता रहता; और उसकी बडी बहन अपने बच्चोंके लिए गरम दूध, ठंडा भात, स्कूल जानेमे देर इत्यादि नाना कारणोंसे रात-दिन रूठकर मुंह फुलाये रहती और घरवालोंको भी परेशान करती।

थोड़े दिन बाद ही बच्चेकी माका देहान्त हो गया। मरते समय मा अपने गोदके बच्चेको अपनी लडकीके हाथ सौंप गई।

अब तो, बहुत जल्द ही मातृहीन बच्चेने बडी आसानीसे अपनी जीजीका हृदय जीत लिया। हाहा-हीही करता हुआ बच्चा जब अपनी बहनके ऊपर आ पड़ता और अपने बगैर-दाँतके छोटेसे मुंहसे उसका मुंह नाक आँख सब-कुछ लील जाना चाहता, अपनी

नन्हीसी मुट्ठीमें उसका जूड़ा पकड़कर जब वह खींचता और किसी भी तरह हाथ-लगी चीजको छोड़नेके लिए तैयार नहीं होता, सूरज उगनेके पहले ही उठकर जब वह लुढ़कता हुआ अपनी जीजीको अपने कोमल स्पर्शसे पुलकित करके जोरसे शोर मचाना शुरू कर देता, और क्रमशः जब वह 'चिचिया' 'जिजिया' 'जिज्जी' पुकार पुकारकर बार-बार उसका ध्यान बटाने लगा, और जब उसने काम-काज और फुरसतके वक्त निषिद्ध कार्य करके निषिद्ध खाना खाकर निषिद्ध जगह जाकर उसपर बाकायदा उपद्रव शुरू कर दिया, तब शशीसे स्थिर नहीं रहा गया। उसने इस स्वेच्छाचारी छोटेसे अत्याचारीके आगे सम्पूर्ण रूपसे आत्मसमर्पण कर दिया। बच्चोंकी मा नहीं थी, इसीसे शायद उसपर उसका आधिपत्य इतना ज्यादा बढ़ गया।

२

लड़केका नाम हुआ नीलमणि। वह जब दो सालका हुआ तब उसके पिता सख्त बीमार पड़ गये। बहुत जल्द चले आनेके लिए जयगोपालको पत्र लिखा गया। जयगोपाल जब बड़ी मुश्किलोंसे दौड़ा हुआ आकर सुसराल पहुंचा तब ससुर कालीप्रसन्न मौतकी घड़ियाँ गिन रहे थे।

मरनेके पहले कालीप्रसन्नने अपने नाबालिक बच्चेका सारा भार जमाई जयगोपालपर छोड़ दिया; और अपनी जयदादका चौथाई हिस्सा अपनी लड़कीके नाम कर दिया।

लिहाजा, जमीन-जायदादकी सुरक्षाके लिए जयगोपालको नौकरी छोड़कर सुसराल चला आना पड़ा।

बहुत दिन बाद पति-पत्नीमें पुनर्मिलन हुआ। कोई जड वस्तु टूट जाय तो जोड़में जोड़ मिलाकर किसी तरह उसे जोडा भी जा सकता है, लेकिन दो आदमीके मन जहाँसे फट जाते हैं, लम्बे विच्छेदके बाद फिर वहाँ ठीक पहले-जैसा जोड़ नहीं मिलता। कारण, मन सजीव पदार्थ है, क्षणमें उसकी परिणति होती है और क्षणमें परिवर्तन।

इस नये मिलनसे शशीके मनमें अबकी बार नये ही भावोंका संचार हुआ। मानो अपने पतिसे उसका दुबारा ब्याह हुआ हो। पुराने दाम्पत्यमें चिराभ्यासकी वजहसे जो एक जड़ता-सी आ गई थी, विरहके आकर्षणसे वह हट गई और अपने पतिको मानो उसने पहलेकी अपेक्षा कहीं ज्यादा पूर्णताके साथ पा लिया। मन-ही-मन उसने प्रतिज्ञा की कि चाहे जैसे भी दिन आवें, चाहे जितने भी दिन हो जायँ, पतिके प्रति अपने उद्दीप्त प्रेमकी उज्ज्वलताको वह जरा भी म्लान न होने देगी।

पर, नये मिलनमे जयगोपालके मनकी हालत कुछ और ही हो गई। पहले जब दोनों अविच्छेद-रूपसे एकसाथ रहते थे, जब स्त्रीके साथ उसके सम्पूर्ण स्वार्थ और विचित्र अभ्यासोंमें एकताका सम्बन्ध था, तब स्त्री उसके जीवनका एक नित्य सत्य हो रही थी, तब वह उसे अलग करके कुछ करना चाहता तो दैनिक अभ्यासके मार्गमें चलते-चलते जरूर उसका कदम अचानक गहरे गड्ढेमें पड जाता। सबूतके तौरपर कहा जा सकता है कि परदेश जाकर पहले-पहल वह बड़े-भारी संकटमें पड़ गया था। वहाँ उसे ऐसा लगने लगा, मानो अचानक उसे किसीने गहरे पानीमें ढकेल दिया

हो। लेकिन, क्रमशः उसके उस अभ्यास-विच्छेदमें नये अभ्यासकी थिगली लग गई।

सिर्फ इतना ही नहीं; बल्कि पहले जो उसके दिन बिलकुल आलसमें कट जाया करते थे, इधर दो सालसे, अपनी आर्थिक हालत सुधारनेकी कोशिशमें उसके मनमें एक तरहका जबरदस्त जागरण आ गया है। उसके मनके सामने मालदार बननेकी एकनिष्ठ इच्छाके सिवा और कोई चीज ही नहीं थी। इस नये नशेकी तीव्रताके मुकाबिले उसका पिछला जीवन बिलकुल सारहीन छाया-सा नजर आने लगा। स्त्रियोंकी प्रकृतिमें खास परिवर्तन ले आता है प्रेम; और पुरुषोंकी प्रकृतिमें कोई खास परिवर्तन होता है तो उसकी जड़में रहती है कोई-न-कोई दुष्ट-प्रवृत्ति।

जयगोपाल दो साल बाद आकर स्त्रीसे मिला तो उसे हूबहू पहलेकी स्त्री नहीं मिली। उसकी स्त्रीके जीवनमें उसके बच्चे-सालेने एक नई ही परिधि कायम कर दी है जो पहलेसे कहीं विस्तृत और असंकीर्ण है। स्त्रीके मनके इस हिस्सेसे वह बिलकुल ही वाकिफ न था, और न इससे उसके मनका कहींसे कुछ मेल ही बैठता था। स्त्री अपने इस शिशु-स्नेहमेंसे पतिको हिस्सा देनेकी बहुत कोशिश करती, पर इसमें वह कृतकार्य होती या नहीं, कहना मुश्किल है।

शशी नीलमणिको गोदमें लेकर हँसती हुई पतिके सामने ले जाती और उसकी गोदमें देनेकी कोशिश करती, लेकिन नीलमणि जी-जानसे कोशिश करके बहनके गलेसे चिपट जाता और रिश्तेदारीका जरा भी लिहाज न करके जीजीके कंधेमें अपना मुँह छिपा लेता।

शशी चाहती कि उसके इस नन्हेसे भाईको मन बहलानेकी जितनी भी तरहकी विद्या आती है, सब-की-सब बहनोईके आगे प्रगट हो जाय। लेकिन, न तो बहनोईको इस विषयमें कोई आग्रह था और न सालेमें ही कोई दिलचस्पी पाई गई। जयगोपालके कुछ समझ-ही-में न आया कि इस दुबले-पतले बड़े माथेवाले मनहूस-सूरत काले-कलूटे बच्चेमें ऐसी क्या बात है जिसके लिए उसपर स्नेह-प्यारकी इतनी ज्यादा फजूलखर्ची की जा रही है!

स्नेह-प्यारकी बारीक बातें औरतें चटसे समझ जाती है। शशी फौरन ही समझ गई कि जयगोपालको नीलमणिसे कोई खास दिलचस्पी नहीं; और शायद वह उसे मनसे चाहता भी नहीं। तब फिर वह अपने भाईको बडी सावधानीसे पतिकी निगाहसे बचाकर रखने लगी। जहाँ तक बनता जयगोपालकी विराग-दृष्टि उसपर नहीं पडने देती। और इस तरह, वह बच्चा उस अकेलीका एकमात्र स्नेहका आधार बन गया, उसको वह इस तरह सम्हाल रखने लगी जैसे वह उसका बडे जतनसे सहेजा हुआ गुप्त धन हो। सभी जानते है कि स्नेह जितना ही गुप्त और जितना ही एकान्तका होता हैं उतना ही प्रबल हुआ करता है।

नीलमणि रोता तो जयगोपालको बहुत ही झुँझलाहट आती, इसलिए शशी उसे झटपट छातीसे लगाकर खूब प्यार कर-करके चुपानेकी कोशिश किया करती; खासकर रातको उसके रोनेसे अगर पतिकी नींद उचटनेकी संभावना होती और पति अगर उस रोते हुए बच्चेके प्रति अत्यन्त हिंसात्मक भावसे रोष और घृणा प्रकट

करता हुआ जल-भुनकर चिल्ला उठता, तब शशी मानो अपराधिनी की तरह संकुचित और अस्थिर हो जाती, और उसी वक्त उसे गोदमें उठाकर दूर ले जाकर अत्यन्त अनुनय-विनय और स्नेहके स्वरमें 'सुआ मेरा' 'राजा बाबू मेरा' इत्यादि कहकर सुला देती।

बच्चों-बच्चोंमे अकसर किसी-न-किसी बातपर झगड़ा हुआ ही करता है। शुरू-शुरूमें ऐसे मौकोंपर शशी अपने भाईका पक्ष लिया करती थी, कारण उसकी मा नहीं है। अब न्यायाधीशके साथ साथ न्यायमें भी फरक होने लगा। हर-हमेश बेकसूर नीलमणिको ही कड़ी सजा भुगतनी पड़ती। यह अन्याय शशीके कलेजेमें तीरकी तरह चुभा करता; और इसके लिए वह अपने दंडित भाईको अलग कमरेमे ले जाकर, उसे मिठाई देकर, खिलौना देकर, प्यार करके, मिट्ठी लेकर यथासाध्य सान्त्वना देनेकी कोशिश किया करती।

नतीजा यह देखनेमें आता कि शशी नीलमणिको जितना ही ज्यादा प्यार करती, जयगोपाल उतना ही उसपर जलता-भुनता रहता; और जयगोपाल नीलमणिसे जितना ही नफरत करता, नाराज होता, शशी उतना ही उसे ज्यादा प्यार करती।

जयगोपाल आदमी ऐसा है कि अपनी स्त्रीपर उसने कभी भी कड़ाई या कठोर व्यवहार नहीं किया, और शशी भी ऐसी है कि विनम्र प्रीतिके साथ चुपचाप अपने पतिकी बराबर सेवा करती रहती है; लेकिन अब सिर्फ नीलमणिको लेकर भीतर-ही-भीतर एक गुठली-सी पकने लगी, जो परस्पर एक दूसरेके लिए पीड़ादायक हो रही है।

इस तरहके नीरव-द्वंद्वका गुप्त आघात-प्रतिघात प्रकट झगड़ेकी अपेक्षा कहीं ज्यादा दुःसह होता है, यह बात कमसे कम विवाहित पाठक-पाठिकाओंसे छिपाना व्यर्थ है।

३

नीलमणिके सारे शरीरमे सिर्फ सिर ही सबसे बड़ा था। देखनेमे ऐसा लगता जैसे विधाताने एक पोले-पतले बॉसमें फूंक लगाकर ऊपरके हिस्सेपर एक बुद्‌बुद बना दिया हो। डाक्टर भी अकसर आशंका प्रकट किया करते कि लड़का बुद्‌बुदके समान ही क्षणभंगुर साबित हो सकता है। बहुत दिनों तक उसे बात करना और चलना नहीं आया। उसके उदास गंभीर चेहरेको देखकर ऐसा मालूम होता कि उसके पिता-माता अपनी ज्यादा-उमरकी सारी चिन्ताओंका भार इसी नन्हेसे बच्चेके माथेपर लाद गये हैं।

जीजीके जतन और सेवासे नीलमणिने अपने खतरेका समय पार करके छठे सालमे कदम रखा।

कातिकमे भइया-दौजके दिन शशीने नीलमणिको नये-नये बढ़िया-बढिया कपडे पहनाये, खूब ठाठ-बाटसे बाबू बनाया, और फिर उसका टीका करनेके लिए थाली सजाई। भइयाको पटेपर बिठाकर अंगूठेमें रोरी लगाकर टीका कर ही रही थी कि इतनेमें पूर्वोक्त स्पष्टभाषिणी पड़ोसिन तारा आ पहुंची और आतेके साथ ही बातकी बातमे उसने शशीके साथ झगड़ा शुरू कर दिया।

वह कहने लगी—"छिपे-छिपे भाइका सत्यानास करके ठाठ-बाटसे लोक-दिखाऊ टीका करनेसे फायदा?"

सुनकर शशीपर एकसाथ आश्चर्य क्रोध और वेदनाकी बिजली-सी टूट पड़ी। अन्तमें उसे सुनना पड़ा कि 'वे दोनों स्त्री-पुरुष मिलकर सलाह करके नाबालिग नीलमणिकी जायदाद मालगुजारी-वसूलीमें नीलाम करवाकर, पतिके फुफेरे भाईके नाम, खरीदनेकी साजिश कर रहे हैं।'

सुनकर शशीने श्राप दिया—"जो लोग इतनी बडी झूठी बदनामी कर रहे हैं, भगवान करें उनकी जीभ गल जाय।" और रोती-हुई वह सीधी पतिके पास पहुंची; और उनसे सब बात कह सुनाई।

जयगोपालने कहा—"आजकलके जमानेमे किसीका भी विश्वास नहीं किया जा सकता। उपेन्द्र मेरी सगी बुआका लड़का, भाई है, उसपर सारी जायदादका भार देकर मैं निश्चिन्त था। उसने कब मालगुजारी नहीं भरी और नीलाममें हासिलपुर खरीद लिया, मुझे कुछ पता ही नहीं लगा।"

शशीने आश्चर्यके साथ पूछा—"तुम नालिश नहीं करोगे?"

जयगोपालने कहा—"भाईके नाम नालिश कैसे करूं? और नालिश करनेसे कुछ नतीजा भी नहीं निकलेगा, गाँठसे रुपयोंकी और बरबादी होगी।"

पतिकी बातपर विश्वास करना शशिका परम कर्तव्य है, लेकिन किसी भी तरह वह विश्वास न कर सकी। तब फिर, उसकी अपनी सुखकी घर-गृहस्थी और प्रेमका दाम्पत्य जीवन सब-कुछ सहसा विकट वीभत्स रूपमें उसके सामने आ खड़ा हुआ। जिस घर-द्वारको वह अपना परम आश्रय समझ रही

थी, अकस्मात् देखा कि उसके लिए वह एक निर्दय-निष्ठुर फाँसी बन गया, जिसने चारों तरफसे उन दोनों भाई-बहनोंको घेर रखा है। वह अकेली अबला स्त्री है, असहाय नीलमणिको कैसे बचावे, उसकी कुछ समझमें नहीं आता। जैसे-जैसे वह सोचने लगी वैसे-वैसे डर और घृणासे संकटमें पड़े-हुए बालक भाईपर उसका स्नेह बढ़ता ही गया। उसका हृदय ममतासे और आँखें आँसुओंसे भर आईं। वह सोचने लगी, अगर उसे कुछ उपाय मालूम होता तो वह लाट साहबके दरबार तक अपनी अरजी भिजवाती; और वहाँसे भी कुछ न होता तो महारानी विक्टोरिया के पास चिट्ठी भेजकर अपने भाईकी जायदाद जरूर बचा लेती। महारानी साहिबा नीलमणिकी सालाना सात-सौ-अट्ठावन रुपये मुनाफेकी जमींदारी, हासिलपुर, हरगिज नहीं बिकने देतीं।

इस तरह शशी जब कि सीधा महारानी विक्टोरियाके दरबारमें न्याय कराके अपने फुफेरे देवरको दुरुस्त करनेका उपाय सोच रही थी तब सहसा नीलमणिको जोरका बुखार आ गया; और ऐसा दौरा आने लगा कि हाथ-पाँव तन्ना गये और बार-बार बेहोशी आने लगी।

जयगोपालने गाँवके एक देशी काले डाक्टरको बुलवाया। शशीने अच्छे डाक्टरके लिए अनुनय-विनय की, तो जयगोपालने जवाब दिया—"क्यों, मोतीलाल क्या बुरा डाक्टर है!"

शशी जब उसके पाँवों पड गई और अपने गलेकी सौगन्द दिलाकर निहोरे करने लगी, तब जयगोपालने कहा—"अच्छा, शहरसे डाक्टर बुलवाता हूं, ठहरो।"

शशी नीलमणिको छातीसे चिपटाये पड़ी रही। नीलमणि भी एक क्षणके लिए उसे आँखोंसे ओझल नहीं होने देता ; डरता कि कहीं धोखा देकर जीजी उसकी कहीं चली न जाय, और इसलिए वह हमेशा उससे लिपटा रहता ; यहाँ तक कि सो जानेपर भी आँचल हरगिज नहीं छोड़ता।

सारा दिन यों ही बीत गया। शामके बाद दिआ-बत्तीके वक्त जयगोपालने आकर कहा—"शहरका डाक्टर नहीं मिला, वह दूर कहीं रोगी देखने गया है।" और साथ-साथ यह भी कहा—"मुकदमेकी खातिर मुझे अभी इसी वक्त बाहर जाना पड़ रहा है ; मैंने मोतीलालसे कह दिया है, वे दोनों वक्त आकर अच्छी तरह इसे देख-भाल जाया करेंगे।"

रातको नीलमणि बायमें बकने लगा। सवेरा होते ही शशी, और कुछ भी विचार न करके, खुद रोगी भाईको लेकर नावमें बैठके कलकत्ता रवाना हो गई।

कलकत्ता जाकर देखा कि डाक्टर घरपर ही हैं ; कहीं बाहर नहीं गये। भले-घरकी स्त्री देखकर डाक्टरने चटसे उसके लिए रहनेका इन्तजाम करा दिया और सहायताके लिए एक प्रौढ़ विधवाको नियुक्त कर दिया। लड़केका इलाज होने लगा।

दूसरे दिन जयगोपाल भी कलकत्ता आ धमका। मारे क्रोधके आग-बबूला होकर उसने स्त्रीको उसी वक्त घर चलनेका हुक्म दिया।

स्त्रीने कहा—"मुझे अगर तुम काट भी डालो, तो भी मैं अभी घर नहीं जानेकी। तुमलोग मेरे नीलमणिको मार डालना चाहते

हो। उसके मा नहीं, बाप नहीं, मेरे सिवा उसके और कोई भी नहीं। मै उसे बचाऊँगी, बचाऊँगी, जरूर बचाऊँगी।"

जयगोपाल तैशमें आकर बोला—"तो तुम यहीं रहो, मेरे घर अब कभी मत आना।"

शशीने उसी वक्त ताडसे जवाब दिया—"तुम्हारा घर कहाँसे आया ! घर तो मेरे भाईका है।"

जयगोपालने कहा—"अच्छा देखा जायगा !"

मुहल्लेके लोग इस घटनाको लेकर कुछ दिन खूब चर्चा करते रहे। पडोसिन ताराने कहा—"अरे, मालिकके साथ लड़ना ही हो तो घरमें रहके लडो न, जितना लड़ना हो। घर छोड़कर बाहर लड़नेकी क्या जरूरत ! कुछ भी हो, आखिर है तो अपना मालिक ही।"

साथमें जो कुछ जमा-पूँजी थी सब खर्च करके, गहने वगैरह जो कुछ थे सब बेच-खोचकर, किसी तरह शशीने अपने भाईको मौतके मुंहसे बचा लिया। और तब उसे खबर मिली कि द्वुआरगाँवमें उन लोगोंकी जो बड़ी-भारी खेतकी जमीन थी, और उसपर उनका मकान भी था, नाना प्रकारसे जिसकी आमद सालाना लगभग डेढ हजार रुपये थी, वह भी जमींदारके साथ मिलकर जयगोपालने अपने नाम करा ली है। अब सारी जायदाद उसके पतिकी ही है, भाईका उसमें कुछ भी न रहा।

बीमारीसे उठकर नीलमणिने करुणस्वरमें कहा—"जीजी, घर चलो।" वहाँ अपने साथी भानजोंमें खेलनेके लिए उसका जी फडफड़ा रहा है। इसीसे बार-बार कहने लगा—"जीजी, अपने

उसी घरमें चलो न, जीजी !" सुनकर जीजी रोने लगी—'हम लोगोंका घर अब है कहाँ ?'

मगर, सिर्फ रोनेसे कोई नतीजा नहीं। अब 'जीजी'के सिवा संसारमें उसके भाईका और है कौन ?—यह सोचकर शशीने आँखें पोंछ डालीं; और हिम्मत करके डिप्टी मजिस्ट्रेट तारिणी बाबूके घर जाकर उनकी स्त्रीकी शरण ली।

डिप्टी साहब जयगोपालको जानते थे। भले-घरकी स्त्री घरसे निकलकर जमीन-जायदादके लिए पतिसे लड़ना चाहती है, इस बातपर शशीसे वे बहुत नाराज हुए। उसे बातोंमें फुसलाये रखकर उसी वक्त उन्होंने जयगोपालको पत्र लिखा। जयगोपाल साले-सहित अपनी स्त्रीको जबरन नावपर बिठाकर घर ले गया।

पति-पत्नीमें द्वितीय विच्छेदके बाद, फिर यह द्वितीय मिलन हुआ। जनम-जनमका साथ : विधाताका विधान जो ठहरा !

बहुत दिन बाद घर लौटकर पुराने साथियोंको पाकर नीलमणि बहुत ही प्रसन्न हुआ; और बड़े आनन्दसे घूमने-फिरने लगा। उसके उस निश्चिन्त आनन्दको देखकर भीतर-ही-भीतर शशिकलाकी छाती फटने लगी।

४

जाड़ेके दिन आये। मजिस्ट्रेट साहब गाँवोंमें तहकीकात करने दौरेपर निकले; और शिकारकी खोजमें जंगलसे सटे हुए एक गाँवमें तम्बू तन गये। गाँवके रास्तेमें साहबके साथ नीलमणिकी मुलाकात हुई। और-और लड़के उन्हें देखकर

चाणक्य-श्लोकमे कुछ रद्दोबदल करके नखी दन्ती शृङ्गी आदिके साथ साहबको भी शामिल करके काफी दूर हट गये। मगर सुगम्भीर-प्रकृति नीलमणि अटल कुतूहलके साथ प्रशान्तभावसे साहबको ही निरीक्षण करता रहा।

साहबको न-जाने क्यों उससे कुछ दिलचस्पी हुई, उसने पास बुलाकर पूछा—"तुम पाठशालामें पढ़ते हो?"

बालकने चुपचाप खडे रहकर सिर्फ सिर हिला दिया—'हाँ।'

साहबने पूछा—"कौनसी पुस्तक पढते हो?"

नीलमणि 'पुस्तक' शब्दका अर्थ न समझकर साहबके मुँहकी ओर देखता रहा।

घर जाकर नीलमणिने मजिस्ट्रेट साहबके साथ अपने इस परिचयकी बात खूब उत्साहके साथ अपनी जीजीसे कही।

दोपहरको चपकन पाजामा पगड़ी वगैरह पहनकर जयगोपाल मजिस्ट्रेट साहबको सलाम करने पहुंचा। अर्थी प्रत्यर्थी चपरासी सिपाही वगैरहकी चारों तरफ धूम मची हुई है। साहब गरमीके डरसे तम्बूके बाहर खुली छायामे कैम्पटेबिल लगाये बैठे है और जयगोपालको चौकीपर बिठाकर उससे गाँवके हालचाल पूछ रहे हैं। जयगोपाल ग्रामवासी सर्वसाधारणके समक्ष जो इस तरह गौरवकी जगह दखल किये बैठा है, इसके लिए मन-ही-मन फूला नहीं समा रहा, उसके मनमे बार-बार यह विचार आ रहा था कि इस समय चक्रवर्ती और नन्दी-घरानेका कोई आकर देख जाता तो अच्छा होता।

इतनेमे नीलमणिको साथ लिये हुए घूंघट ताने एक स्त्री सीधी

मजिस्ट्रेटके सामने आकर खड़ी हो गई। बोली—"साहब, आपके हाथ में अपने इस अनाथ भाईको सौंप रही हूं, आप इसकी रक्षा कीजिये।"

साहब अपने उस पूर्वपरिचित गंभीरप्रकृति और बड़े माथेवाले बच्चेको देखकर और उसके साथकी स्त्रीको भले-घरकी बहू-बेटी समझकर उसी वक्त उठके खड़ा हो गया; बोला—"आप तम्बूमें जाइये।"

"मुझे जो कुछ कहना है, मैं यहीं कहूंगी।"

जयगोपालका चेहरा फक पड़ गया; और मारे घबराहटके वह ऐसा चञ्चल हो उठा जैसे अङ्गारपर पाँव पड़ गया हो। कुतूहली गाँवके लोग कुतूहलके मारे चारों तरफसे खिसक-खिसककर सामने आनेकी कोशिश करने लगे। इतनेमें साहबने बेंत उठाया, और सब भाग खड़े हुए।

तब फिर, शशिकलाने अपने भाईका हाथ पकड़े हुए, बिना मा-बापके उस अनाथ बच्चेका सारा इतिहास शुरूसे आखिर तक कह सुनाया। जयगोपालने बीच-बीचमें बाधा देनेकी कोशिश की, पर साहबने उसे जहाँका तहाँ गरजकर डाट दिया—"चुप रहो!" और बेंतका इशारा करके उसे चौकीसे उठके सामने खड़ा होनेका हुक्म दिया।

जयगोपाल मन-ही-मन शशिकलापर गरजता हुआ चुपचाप खड़ा रहा। नीलमणि अपनी जीजीसे बिलकुल सटकर मुँह बाये खड़ा-खड़ा सब सुनता रहा।

शशीकी बात खतम होनेपर मजिस्ट्रेटने जयगोपालसे कई

सवाल किये; और उनका जवाब सुनकर बहुत देर तक चुप रहनेके बाद शशीको सम्बोधित करके बोले—"बेटी, यह मामला हालाँकि मेरे इजलासमे नहीं चल सकता, लेकिन तुम निश्चिन्त रहो, इस मामलेमे मुझे जो कुछ करना है, मै जरूर करूँगा। तुम अपने भाईको लेकर बेधड़क अपने घर जा सकती हो।"

शशीने कहा—"साहब, जब तक अपना मकान मेरे भाईको नहीं मिल जाता, तब तक इसे लेकर घर जानेकी हिम्मत मै नहीं कर सकती। अब, इसे अगर आप अपने पास नहीं रखते तो और कोई भी इसे नहीं बचा सकता।"

साहबने कहा—"तुम कहाँ जाओगी ?"

शशिकलाने कहा—"मै अपने पतिके घर लौट जाऊँगी। मेरी कुछ चिन्ता नहीं।"

साहब मुसकराया और तावीज बँधे उस दुबले-पतले गम्भीर प्रशान्त मृदुस्वभाव काले रंगके देशी बच्चेको अपने पास रखनेको राजी हो गया।

इसके बाद, शशी जब विदा होने लगी तब बच्चेने उसकी धोती पकड़ ली। साहबने कहा—"बेटा, तुम डरो मत, आओ, मेरे पास आओ।"

घूँघटके भीतर आँसुओंका झरना बहाते और पोंछते हुए बच्चेकी जीजीने कहा—"मेरा राजा बाबू है न, भइया है न, जा, जा, साहबके पास जा,—तेरी जीजी तुझसे फिर मिलेगी, अच्छा !"

इतना कहकर बच्चेको उठाकर उसने छातीसे लगा लिया; और माथेपर पीठपर हाथ फेरकर किसी तरह उसके हाथसे अपनी

साड़ीका ठोक छुड़ाया और बड़ी तेजीसे वहाँसे चल दी। साहबने तुरत ही बच्चेको अपने बायें हाथसे घेर लिया; और बच्चा 'जीजी री, 'जीजी री!' चिल्लाता हुआ जोर-जोरसे रोने लगा। शशीने एक बार मुड़कर, दूरसे अपना दाहना हाथ उठाकर, अपनी तरफसे उसे खामोश तसल्ली दी; और अपना विदीर्ण हृदय लेकर और-भी तेजीसे आगे निकल गई।

फिर उसी, बहुत दिनोंके पुराने, चिरपरिचित घरमें पति-पत्नीका मिलन हुआ। विधाताका विधान ठहरा!

लेकिन यह मिलन ज्यादा दिनों तक टिका नहीं। कारण, इसके कुछ ही दिन बाद, एक दिन सवेरे गाँववालोंने सुना कि रातको जयगोपालकी स्त्री हैजेसे मर गई; और रात ही-को उसकी दाहक्रिया हो गई।

विदाके वक्त शशी अपने भाईसे वादा कर गई थी कि उसकी जीजी उससे फिर मिलेगी, मालूम नहीं उस वादेको वह पूरा कर सकी या नहीं।

भाई-भाई

बड़ी बहू जो बातें सुना गई हैं, उनकी धार भी खूब तेज थी और जहर भी। जिस अभागिनीके लिए उनका प्रयोग किया गया था उसकी चित्त-पुतली बिलकुल जल-भुनकर लोटने लगी।

वे बातें खासकर उसके पतिको लक्ष्य करके कही गई थीं; और पति राधामुकुन्द उस समय रातका भोजन समाप्त करके पास

ही बैठे बैठे ताम्बूलके साथ तम्बाकूका धुआँ मिलाकर खाना पचानेमे लगे हुए थे। बड़ी बहूकी इन तीखी बातोंने उनके कानोंमें प्रवेश करके उनकी परिपाक-क्रियामे कोई खास बाधा पहुंचाई हो, सो भी नहीं। अविचलित गम्भीरताके साथ तम्बाकू खतम करके वे रोजकी आदतके माफिक ठीक वक्तपर सोने चले गये।

परन्तु ऐसी असाधारण परिपाक-शक्तिकी आशा सबसे नहीं की जा सकती। रासमणिने आज सोनेके कमरेमे पहुचकर पतिके साथ ऐसा सलूक किया कि इसके पहले शायद ही कभी किया हो। और-और दिन तो वह शान्तभावसे बिस्तरपर जाकर चुपचाप पतिकी सेवामें लग जाती थी, आज एकदम जोरसे कंकण झनकारकर पतिकी तरफ पीठ करके एक किनारे पड़ रही, और साथ ही रो-रोकर पलंग कँपाने लगी।

राधामुकुन्दने इस बातपर कुछ ध्यान नहीं दिया, और बगलके लम्बे तकियेसे लिपटकर सोनेकी कोशिश करने लगे। लेकिन उनकी इस उदासीनतासे स्त्रीका अधैर्य उत्तरोत्तर बढ़ते देख अन्तमे उन्होंने मृदु-गम्भीर स्वरमे कहा—"एक खास कामके लिए मुझे खूब सवेरे ही उठना है, अब सोना जरूरी है।"

पतिके कंठस्वरसे रासमणिका रोना अब भीतर न रह सका, क्षण-भरमे बाहर फूट निकला।

राधामुकुन्दने पूछा—"क्या हो गया?"

रासमणिने रुँधे हुए स्वरमे उफनते हुए कहा—"सुना थोड़े ही है?"

"सुना तो है। लेकिन बड़ी बहूने एक भी बात झूठी नहीं कही। मैं क्या भाई साहबके अन्नसे नहीं पल रहा हूं? तुम्हारे ये कपड़े-लत्ते-जेवर, ये सब क्या मैंने अपने बापके पैसेसे खरीदे हैं? जो खाने-पहननेको देता है वह अगर दो-एक कड़ी बात भी कह दे, तो उसे भी खाने-पहननेमें शामिल समझ लेना चाहिए।"

"ऐसे खाने-पहननेसे अटकी क्या है?"

"जीना तो होगा ही।"

"मर जाऊँ तो अच्छा।"

"जब तक नहीं मरतीं तब तक जरा सोनेकी कोशिश करो, आराम पाओगी।"—कहते हुए राधामुकुन्दने तुरत अपने उपदेश और दृष्टान्तमें सामंजस्य कायम कर दिया।

राधामुकुन्द और शशिभूषण सहोदर भाई नहीं है; बहुत निकट सम्बन्ध भी नहीं है, बल्कि 'गाँवका रिश्ता' कहा जाय तो कोई हर्ज नहीं। परन्तु प्रेम-बन्धन सहोदर भाईसे किसी प्रकार भी कम नहीं। बड़ी बहू ब्रजसुन्दरीको यह जरा असह्य मालूम होता। खासकर शशिभूषण कोई चीज देने-करनेके बारेमें छोटी बहूकी अपेक्षा अपनी स्त्रीके प्रति ज्यादा पक्षपात नहीं करते; बल्कि जिस चीजका जोड़ा न मिलता उसे, अपनी स्त्रीको वंचित रखकर, छोटी बहूको ही दे देते। इसके सिवा अकसर इस बातका भी परिचय मिलता कि बहुधा स्त्रीके अनुरोधकी अपेक्षा राधामुकुन्दकी सलाहको ही वे ज्यादा निर्भरयोग्य समझते। शशिभूषण आदमी बिलकुल ढीले-ढाले स्वभावके है, इसीसे घरका तमाम काम और जमींदारीका सारा भार राधामुकुन्दपर ही है।

बडी बहूको हमेशा ही सन्देह बना रहता कि राधामुकुन्द भीतर ही भीतर उसके पतिको दगा देनेकी तैयारियॉ कर रहा है, और जितना ही इस बातका कोई प्रमाण नहीं मिलता उतना ही राधामुकुन्दपर उसका विद्वेष बढ़ता ही जाता। वह सोचती, प्रमाणोंने भी अन्यायपूर्वक उनके विरुद्ध पक्ष लिया है, इसलिए वह प्रमाणोंपर ही गुस्सा होकर उनके प्रति अत्यन्त अवज्ञा प्रकट करती हुई अपने सन्देहको घरमे बैठकर दिन-दूना रात-चौगुना दृढ़ करती रहती। उसकी यह बड़े जतनसे सुलगाई हुई मानसिक आग आग्नेयगिरिके अग्न्युत्पातकी तरह भूकम्पके साथ अकसर कभी-कभी चरम गरम भाषामे फूट निकलती।

रातको राधामुकुन्दकी नींदमे बाधा आई थी या नहीं, कहा नहीं जा सकता, लेकिन दूसरे दिन सवेरे उठकर वे उदास मुँहसे शशिभूषणके पास जा खड़े हुए। शशिभूषणने बड़ी घबराहटके साथ पूछा—"राधे, तुम्हे आज ऐसा क्यों देख रहा हूं? तबीयत खराब है क्या?"

राधामुकुन्दने मृदुस्वरमें धीरे-धीरे कहा—"भइया, अब तो मेरा यहॉ रहना नहीं हो सकता।" और फिर, कल शामको बड़ी बहूने जो उनपर आक्रमण किया था, संक्षेपमे और शान्त भावसे उसका सारा हाल कह सुनाया।

शशिभूषणने हॅसते हुए कहा—"बस, इत्ती-सी बात है! यह तो कोई नई बात नहीं। ये औरते तो पराये-घरकी लड़की ठहरीं, मौका पाते ही दो-चार बात कहेगी ही। इससे क्या घरके आदमियोंको घर छोड़ जाना चाहिए? बातें तो मुझे भी

कभी-कभी सुननी पड़ती हैं, इससे क्या मैं घर-द्वार छोड़ दूं ?"

राधेने कहा—"औरतोंकी बातें क्या मैं नहीं सह सकता, तो फिर पुरुष होकर जनमा ही क्यों था ! सिर्फ डरता हूं, तुम्हारे जीवनमें अशान्ति न आ जाय।"

शशिभूषणने कहा—"तुम्हारे चले जानेपर मुझे कौनसी शान्ति मिल जायगी ?"

अब और ज्यादा बातचीत न हुई। राधामुकुन्द एक गहरी सॉंस लेकर वहॉंसे चले गये ; उनके हृदयका भार ज्योंका त्यों बना रहा।

इधर बड़ी बहूका कोप क्रमशः बढ़ता ही जा रहा है। हजारों बहानोंसे जब-तब वे राधेको बुरी-भली सुनाती ही रहतीं। क्षण-क्षणमें छूटनेवाले उनके वाक्यवाणोंने रासमणिकी अन्तरात्माको एक प्रकारसे शर-शय्यापर सुला दिया। राधे यद्यपि चुपचाप पड़े-पड़े तमाकू पीते रहते और स्त्रीको क्रन्दनोन्मुखी देखते ही ऑंखें मींचकर खुर्राटे लेना शुरू कर देते, मगर फिर भी, मुँहका भाव देखनेसे मालूम हो जाता कि उन्हें भी यह सब असह्य मालूम होने लगा है।

परन्तु शशिभूषणके साथ उनका सम्बन्ध तो कुछ आजका नहीं है। दोनों भाई जब सवेरे ही बासी भात खाकर एकसाथ पाठशाला जाते थे, दोनों भाई जब एकसाथ सलाह करके पंडितजीको धोखा देकर पाठशालासे भागकर किसानोंके लड़कोंके साथ मिलकर तरह-तरहके खेल खेलते थे, एक बिस्तरपर सोते

और अँधेरेमें मौसीके मुँहसे कहानी सुनते थे, घरवालोंसे छिपाकर रातको दूसरे गाँवमें रामलीला या नाटक देखने जाते थे और सवेरे ही पकड़े जानेपर अपराध और दण्डको दोनों समान रूपसे बाँट लेते थे, तब कहाँ थी ब्रजसुन्दरी, और कहाँ थी रासमणि। जीवनके इतने दिनोंको क्या एक ही दिनमें छाँटकर अलग किया जा सकता है? परन्तु ऐसे सन्देहका आभासमात्र भी कि यह बन्धन मतलबका है और यह गाढ़ा स्नेह और मेलजोल दूसरेकी कमाईमेंसे हिस्सा बँटानेका एक ढोंग है, उन्हें विषतुल्य मालूम होता; इसलिए और कुछ दिन इसी तरह चलते रहनेसे क्या होता, कह नहीं सकते। लेकिन इसी बीचमें एक भारी दुघटना हो गई।

जिस समयकी बात कही जा रही है, उन दिनों निर्दिष्ट तारीखको सूर्यास्तके पहले अंग्रेज सरकारकी मालगुजारी न चुकनेपर जमींदारोंकी जायदाद नीलामपर चढा दी जाती थी।

एक दिन समाचार आया कि शशिभूषणकी एकमात्र जमींदारी, परगना इनायतसाही, मालगुजारी न चुकनेकी वजहसे नीलाम हो गई।

राधामुकुन्दने अपने स्वाभाविक मन्द-प्रशान्तभावसे कहा—"मेरा ही दोष है।"

शशिभूषणने कहा—"तुम्हारा क्या दोष! तुमने तो रुपये भेज ही दिये थे, रास्तेमें डकैतोंने लूट लिया तो तुम क्या करते?"

दोष किसका है, अभी इस बातके निर्णयसे कोई लाभ नहीं, अब तो गृहस्थी चलानी होगी। शशिभूषणका स्वभाव और शिक्षा

ऐसी नहीं कि वे सहसा किसी काम-धन्धेमें पड़ जाते। वे तो मानो घाटकी पक्की सीढ़ियोंपरसे फिसलकर पल-भरमें गहरे पानीमें जा डूबे।

पहले तो वे स्त्रीका जेवर गिरवी रखनेको तैयार हुए। पर राधामुकुन्दने रुपयोंकी एक थैली उनके सामने पटककर उन्हें रोक दिया। उन्होंने पहलेसे ही अपनी स्त्रीका जेवर गिरवी रखकर रुपयोंका इन्तजाम कर लिया था।

गृहस्थीमें यह एक महान् परिवर्तन दिखाई दिया कि सम्पत्कालमें गृहिणीने जिन्हें अलग करनेकी हजार कोशिश की, विपत्कालमें उन्हींको उन्होंने व्याकुलभावसे जकड़ लिया। अब उन्हें यह समझनेमें देर न लगी कि इस समय दोनों भाइयोंमेंसे किसके ऊपर ज्यादा भरोसा किया जा सकता है। अब तो, पहले कभी उनका राधामुकुन्दसे रंचमात्र भी द्वेष-भाव था इस बातका नामोनिशान तक नहीं दिखाई देता।

राधामुकुन्द पहलेसे ही अपनी अलग जीविकाके लिए तैयार थे। पासके शहरमें उन्होंने मुख्तारी करना शुरू कर दिया। उन दिनों मुख्तारीके काममें आमदनीके रास्ते आजकलकी बनिस्बत बहुत ज्यादा थे। तीक्ष्णबुद्धि सावधान राधामुकुन्दने पहले ही से अपनी धाक जमा रखी थी। धीरे-धीरे उन्होंने जिले-भरके बड़े-बड़े जमींदारोंका काम हाथमें लेना शुरू कर दिया।

अब रासमणिकी अवस्था पहलेसे ठीक उलटी है। अब रासमणिके पतिकी कमाईसे ही व्रजसुन्दरी और शशिभूषण अपनी

गुजर करते है। इस बातपर उसने कभी साफ-साफ घमंड दिखाया है या नहीं, मालूम नहीं पड़ता। एक दिन शायद आभाससे, बरताव और इशारेसे, उसने ऐसा भाव व्यक्त किया होगा, पर वह सिर्फ एक ही दिनके लिए; उसके दूसरे ही दिनसे वह मानो और भी नम्र हो गई। कारण, बात उसके पतिके कानों तक पहुंच चुकी थी। उस रातको राधामुकुन्दने किन-किन युक्तियोंका प्रयोग किया था, ठीक नहीं कहा जा सकता। दूसरे दिनसे उसके मुँहमे जबान तक न रही। बड़ी-बहूकी वह दासी-सी बनकर रहने लगी। सुनते है, राधामुकुन्दने उसी दिन स्त्रीको मायके भेजनेकी तैयारी कर ली थी, और एक हफ्ते तक उसका मुँह नहीं देखा था। अन्तमें ब्रजसुन्दरीने देवरको समझा-बुझाकर बड़ी कोशिशसे दम्पतिमे मेल कराया था, और कहा था, "छोटी बहू तो कल आई है; खबर है, मै कितने दिनोंसे तुम्हारे घरमें हूं! तुमसे हममे जो हमेशाका प्रेमका नाता है, उसे यह बेचारी अभी क्या समझेगी? अभी तो लडकी ही है, माफ कर दो।"

राधामुकुन्द घरू खर्चके लिए सब रुपये ब्रजसुन्दरीको लाकर देते। रासमणि अपने लिए जरूरी खर्चके रुपये नियमानुसार या माँगकर ब्रजसुन्दरीके पाससे पाती। घरमें बड़ी-बहूकी हालत पहलेसे अच्छी ही है, बुरी नहीं; कारण पहले शशिभूषण स्नेहके कारण तथा और-भी बहुत-सी बातें सोचकर रासमणिका ही अधिक पक्षपात करते थे।

शशिभूषणके चेहरेपर यद्यपि सहज प्रफुल्ल हँसीकी कमी नहीं थी, किन्तु फिर भी, गुप्त बीमारीसे वे दिनोंदिन कमजोर हुए जा

रहे थे। और किसीका उस तरफ ध्यान ही नहीं गया था। भइयाकी यह हालत देखकर सिर्फ राधेकी ही आँखोंमें नींद नहीं थी। अकसर गहरी रातको जब रासमणिकी आँख खुलती, तो वह देखती कि उसके पति गहरी साँस ले-लेकर अशान्तभावसे करवटें बदल रहे हैं।

राधामुकुन्द अकसर शशिभूषणको जाकर तसल्ली देते—"तुम कोई फिकर मत करो, भइया। तुम्हारी पैतृक सम्पत्ति मैं फिरसे तुम्हें वापस ला दूँगा, जैसे भी बने, जरूर ला दूँगा। अब ज्यादा देर भी नहीं है।"

वास्तवमें ज्यादा दिनकी देर भी नहीं हुई। शशिभूषणकी जायदाद जिस आदमीने नीलाममें खरीदी थी वह था व्यवसायी, जमींदारीके कामसे बिलकुल अनभिज्ञ। इज्जतकी उम्मीदसे खरीदी थी; पर उलटी घरसे मालगुजारी देनी पड़ती थी, एक पाई का भी मुनाफा नहीं। राधामुकुन्द वर्षमें दो बार अपने लठैतोंको साथ ले जाकर लूट-खसोट मचाकर लगान वसूल कर लाते थे। प्रजा भी उनके वशमें थी। बनिया होनेसे नये जमींदारसे लोग भीतरी घृणा रखते थे, और इसी कारण राधामुकुन्दकी सलाह और सहायता पाकर वे उसके खिलाफ चलने लगे।

बहुत दिनों तक मामला-मुकदमा चलता रहा; लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। आखिर झख मारकर बेचारा इस झंझटसे बरी होनेके लिए उत्सुक हो उठा। बहुत थोड़ी कीमत देकर राधामुकुन्दने अपनी पहलेकी सम्पत्ति फिरसे खरीद ली।

लिखनेमें जितना थोड़ा समय मालूम होता है, असलमें वह

उतना थोड़ा नहीं है। इस बीचमें दस साल गुजर गये। दस साल पहले शशिभूषण यौवनके उस पार प्रौढावस्थाके किनारेपर थे, किन्तु इन आठ-दस सालोंमे वे मानो भीतर रुके हुए मानसिक उत्तापकी भाफसे चलनेवाले हवाई-जहाजमे चढ़कर बडी तेजीसे एकदम बुढापेके बीचोबीच जा पहुंचे। पैतृक सम्पत्ति जब लौट आई तब, न-जाने क्यों, उससे उन्हे खुशी नहीं हुई। बहुत दिनोंसे काममे न आनेके कारण हृदयवीणाकी खूंटियाँ शायद ढीली हो गई हैं, अब हजार बार खींचकर बॉधनेपर भी वे तार ढीले पड़ जाते हैं, पहलेका-सा स्वर अब उसमे किसी भी तरह नहीं निकलता।

गॉवके लोगोंने बडा-भारी आनन्द प्रकट किया। सभीने इस बातपर जोर दिया कि शशिभूषण इस खुशीमे एक दावत कर डालें। शशिभूषणने राधामुकुन्दसे पूछा—"क्यों, तुम्हारी क्या राय है?"

राधामुकुन्दने कहा—"जरूर, जरूर! ऐसे शुभ अवसरपर जरूर आनन्द मनाना चाहिए।"

गॉवमे बहुत दिनोंसे कोई उल्लेखयोग्य दावत नहीं हुई थी। गॉवके छोटे-बडे सभी लोग दावतमे शामिल हुए; और आनन्दसे खा-पीकर घर लौटे। ब्राह्मण दक्षिणा पाकर और गरीब-दु:खी पैसा और कपडा पाकर आशीर्वाद देते हुए विदा हुए।

शीतके प्रारम्भमें गॉवकी आब-हवा वैसे ही अच्छी नहीं रहती, उसपर पड़ी लगातार चार रोज तक ज्योनारके कामकी

कड़ी मेहनत, और खाना-पीना भी वक्तपर नहीं हुआ। शशिभूषण इसे झेल न सके। पाँचवें रोज एकदम खटियापर पड़ रहे। और-और दुरूह उपसर्गोंके साथ कँपकँपीके साथ जोरका बुखार चढ़ा। वैद्यने सिर हिलाते हुए कहा—"बड़ी कठिन बीमारी है।"

रातके तीसरे पहर रोगीके घरसे सबको बाहर निकालकर राधामुकुन्दने कहा—'भइया, तुम्हारे पीछे जायदादका हिस्सा किसे कितना दिया जाय, बता जाओ ?"

शशिभूषणने कहा—"भइया, मेरा है ही क्या जो किसीको दे जाऊँ ?"

राधामुकुन्दने कहा—'सब-कुछ तुम्हारा ही तो है।"

शशिभूषणने उत्तर दिया—"किसी समय मेरा था, अब मेरा नहीं है।"

राधामुकुन्द कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे। बैठे-बैठे खटियाके एक कोनेका चादरा दोनों हाथसे ठीक करने लगे। शशिभूषणको साँस लेनेमें बडी-भारी तकलीफ होने लगी।

राधामुकुन्दने खटियाके पाँयतेकी ओर बैठकर रोगीके पाँव पकड़कर कहा—"भइया, मैंने एक महापातकका काम किया है, आज तुमसे कहता हूं ; अब आगे शायद मौका नहीं मिलेगा।"

शशिभूषणने कोई जवाब नहीं दिया। राधामुकुन्द कहते चले गये, वही स्वाभाविक शान्त भाव था, धीरे-धीरे बोल रहे थे, सिर्फ बीच-बीचमें एक-एक गहरी साँस लेने लगे—"भइया, मेरे अन्दर ठीकसे सब बातें कहनेकी ताकत नहीं। मेरे मनका असली भाव अन्तरजामी ही जानते हैं, और दुनियामें अगर कोई जान

सकता है तो शायद तुम ही जान सकते हो। बचपनसे तुममें हममे कोई अन्दरूनी भेद नहीं था, था तो सिर्फ एक बाहरका। सिर्फ एक भेद था, तुम धनी थे, मै गरीब था। जब देखा कि उस जरा-सी बातपर तुममें हममे भेद पड़नेकी सम्भावना बराबर बढ़ती ही जा रही है, तब मैंने ही उस भेदको मिटा दिया। भइया, मैंने ही मालगुजारीके रुपये लुटवाकर तुम्हारी जायदाद नीलाम करा दी थी।"

शशिभूषणने रंचमात्र भी आश्चर्यका भाव प्रकट नहीं किया; जरा मुसकराकर मुलायम स्वरसे रुंधे हुए गलेसे बोले—"भइया, तुमने तो अच्छा ही किया था। लेकिन जिस मतलबसे किया था वह क्या सिद्ध हुआ? मुझे तुम अपने पास रख सके? —दयामय परमात्मा!"

उनके प्रशान्त मृदु मन्द मुसकराहटपर ऊपरसे आँसूकी दो बूदें ढलक पड़ीं।

राधामुकुन्दने उनके पाँव तले सिर रखकर कहा—"भइया, मुझे माफ कर दिया?"

शशिभूषणने पास बुलाकर उनका हाथ थामकर कहा—"तो सुनो। यह सब बातें मुझे मालूम थीं। तुमने जिनके साथ षड्यन्त्र किया था उन्होंने मुझसे सब कह दिया था। मैंने तभीसे तुम्हे माफ कर दिया है।"

राधामुकुन्द दोनों हथेलियोंसे अपने लज्जित मुंहको ढककर रोने लगे।

कुछ देर बाद बोले—"भइया, अगर माफ ही कर चुके हो,

तो अपनी सम्पत्ति भी तुम ले लो। गुस्सा होकर वापस मत करो।"

शशिभूषण उत्तर न दे सके। उनकी जबान बन्द हो चुकी थी। राधामुकुन्दके मुँहकी ओर एकटक देखते हुए उन्होंने अपना दाहना हाथ उठा दिया। उसके क्या मानी थे, कह नहीं सकते। शायद राधामुकुन्द समझ गये होंगे।

जासूस

मै पुलिसका जासूस हूं। मेरे जीवनके सिर्फ दो ही लक्ष्य थे, एक मेरी स्त्री और दूसरा रोजगार। पहले मेरा सारा कुनबा एकसाथ रहता था और मै भी उसीमे था। बादमें वहाँ मेरी स्त्रीका अनादर-सा होने लगा, तो मै भाई-साहबसे लड़कर अलग हो गया। भाई-साहब ही रोजगार करके हमलोगोंका भरण-पोषण किया करते थे, इसलिए इस तरह सहसा सस्त्रीक उनका आश्रय छोड़कर चला आना मेरे लिए दुःसाहसका काम था, इसमे तो कोई शक ही नहीं।

लेकिन, कभी भी मेरे अन्दर आत्म-विश्वासकी कमी नहीं थी। मै निश्चित जानता था कि जैसे मैने सुन्दरी स्त्रीको वश किया था वैसे मैं विमुख भाग्य-लक्ष्मीको भी वशमे ला सकता हूं। बंदा महिमचन्द्र इस संसारमे किसीसे पीछे नहीं पडा रहेगा।

पुलिस-विभागमे मामूली तौरसे घुसा; और अन्तमें जासूसका पद हासिल करनेमे ज्यादा देर नहीं लगी।

उज्ज्वल दीपशिक्षासे भी जैसे काजल निकलता है वैसे ही मेरी स्त्रीके प्रेमसे ईर्ष्या और सन्देहकी कालिमा निकलती थी। पर उससे मेरे काममे कोई भी हर्ज नहीं होता। बात यह थी कि जासूसीके कामसे मुझे जगह-जगह जाना पडता, उसमे समय-असमयका विचार करनेसे कतई काम नहीं चलता, बल्कि उसमे तो स्थानकी अपेक्षा अस्थान और समयकी अपेक्षा असमय ही ज्यादा काम आता, और इससे मेरी स्त्रीका स्वभावसिद्ध सन्देह और-भी मानो दुर्निवार हो उठता। वह मुझे डरानेकी गरजसे कहा करती—"तुम इस तरह जब-है-तब जहाँ-तहाँ रह जाया करते हो, कभी-कदा मुझसे मिलते हो, मेरे लिए तुम्हे कुछ आशंका नहीं होती?" मै जवाब देता—"सन्देह करना हमारा रोजगार नहीं, इसीलिए घरमे कमसे कम उसे मैं नहीं लाता।"

स्त्री कहती—"सन्देह करना मेरा भी रोजगार नहीं, मेरा वह स्वभाव है; मुझे तुम रत्ती-भर भी सन्देहका कारण दोगे तो मै सब-कुछ कर सकती हूं।"

डिटेक्टिव लाइनमे मै सबसे श्रेष्ठ होऊँगा, मै अपना एक नाम कायम करूँगा, यह मेरी दृढ प्रतिज्ञा थी। इस विषयके जितने भी विवरण और कहानी-उपन्यास वगैरह मिले, मैंने सब पढ डाले। लेकिन पढ़नेसे सिर्फ मनका असन्तोष और अधैर्य ही बढता गया। कारण, हमारे देशके अपराधी लोग डरपोक और बेवकूफ हैं, उनके कसूरोंमे कोई जान नहीं, निहायत सीधे-सादे होते हैं, उनमे दुरूहता दुर्गमता वगैरह ऐसे गुण बिलकुल नहीं होते जिससे कमसे कम हम जैसे उत्साही जासूसोंको नाम पैदा करनेका कोई

अच्छा 'चान्स' मिले। आदमीके खून बहानेकी उत्कट उत्तेजनाको हमारे देशके खूनी किसी भी हालतमें अपने अन्दर दबाकर नहीं रख सकते। जालसाज जो जाल फैलाते हैं, उनमें वे बहुत जल्द खुद अपनेको ही ऊपरसे नीचे तक ज्यादा फँसा लेते हैं, अपने कसूरोंसे निकल भागनेका कूट-कौशल उन्हें जरा भी नहीं आता। सच तो यह है कि ऐसे निर्जीव देशमें जासूसीका काम करके न तो कोई आराम है और न कोई गौरव।

कलकत्ताके मारवाड़ी जुआचोरोंको बड़ी आसानीसे गिरफ्तार करके कितनी ही बार मन-ही-मन मुझे कहना पड़ा है, "अरे अपराधी-कुल-कलंकियो, दूसरोंका सत्यानाश करना गुणी उस्तादोंका काम है, तुम जैसे अनाड़ी बेवकूफोंको तो साधु तपस्वी होना चाहिए था।" और खूनियोंको पकड़कर भी मेरा मन यही बोल उठा है, "अरे मूर्खो, अंग्रेज-सरकारका फाँसीका तख्ता क्या तुम जैसे गौरवहीन प्राणियोंके लिए बनाया गया था, तुमलोगोंमें न है उदार-कल्पनाशक्ति, न है कठोर आत्म-संयम, तुम नालायको, किस बिरतेपर खूनी बननेकी हिमाकत करते हो!"

मैं अपनी कल्पना-दृष्टिसे जब लन्दन और पेरिसके जनाकीर्ण राजमार्गोंके दोनों बगल जाड़ेकी ठंडी हवासे आकुल आसमान चूमनेवाले बड़े-बड़े मकानोंकी कतारें देखने लगता, तो रोमांचित हो उठता। मन-ही-मन सोचता, इन ऊँचे-ऊँचे महल-से मकानोंमें और सड़कों-गलियोंमेंसे जैसे जन-स्रोत, कर्म-स्रोत, उत्सव-स्रोत रात-दिन बहता चला जा रहा है, वैसे ही सर्वत्र एक हिंसापूर्ण कुटिल कालिमा-कुञ्चित भयंकर अपराध-प्रवाह भी तले-तले अपनी

राह बनाता हुआ दौड रहा है और उसीके पास यूरोपीय सामाजिकताका हास्य-कौतुक शिष्टाचार ऐसी विराट-भीषण रमणीयता प्राप्त कर रहा है। और एक हमारा कलकत्ता है, जिसमें सडक और गली-कूचियोंमे खिडकी-खुले मकानोंमे रसोई-पानी, घरका काम-धन्धा, परीक्षाकी पढाई, ताश-चौसरकी बैठक, दाम्पत्य-कलह, बहुत हुआ तो भाई-भाईमे झगडा और मामले-मुकद्मोंके विषयकी सलाह, इनके सिवा कुछ भी नहीं होता। किसी एक मकानकी तरफ देखकर कभी भी ऐसी बात मनमे नहीं उठती कि अभी इस घरके किसी-एक कोनेमे जरूर कोई शैतान छुपा हुआ अपने मनके काले काले अंडोंको से रहा है।

अकसर मै सडकों और गली-कूचियोंमे जाकर राहगीरोंका चेहरा और उनके चलने-फिरनेका ढंग गौरसे देखा करता। किसीके हाव-भावमे जरा भी संदेह होता तो मै अकसर उसका पीछा करता। उसके नाम-धामका पता लगाता, और अन्तमे बड़ी निराशाके साथ आविष्कार करता कि वे निष्कलंक भले आदमीके सिवा और कुछ नहीं। और तो क्या, उनके आत्मीय-स्वजन और बन्धु-बान्धव तक उनके खिलाफ किसी तरहका झूठा दोष नहीं लगाते, और न बदनामी ही करते। राहगीरोंमे जो सबसे ज्यादा शैतान-सा मालूम हुआ है, यहाँ तक कि देखते ही निश्चितरूपसे ऐसा विश्वास हुआ है कि यह शख्स अभी तुरत कोई-न-कोई भयंकर अपराध करके सी-आई-डी विभागकी आँखोंमे धूल झोंकनेके लिए बड़ी चतुराईके साथ भेष बदलकर भागा जा रहा है, उसका पीछा करके पूरा पता लगानेपर अन्तमे मालूम हुआ कि वह

बेचारा किसी एक छात्रवृत्तिवाले स्कूलका द्वितीय पंडित है, लड़कोंको पढ़ाकर घर जा रहा था। और फिर सोचने लगा, ये ही सब लोग अगर दूसरे किसी देशमें पैदा होते तो प्रसिद्ध चोर-डाकू हो सकते थे; एकमात्र हमारा ही देश ऐसा अभागा है कि यथोचित जीवनीशक्ति और यथेष्ट पौरुषके अभावमे बेचारे जिन्दगी-भर सिर्फ पंडिताई करके बुढापेमें पेन्सन पाते और मर जाते है। बड़ी भारी कोशिश और काफी खोज करनेके बाद उक्त सेकेण्ड पण्डितकी निरीहतापर मेरी इतनी गहरी अश्रद्धा हुई थी कि थाली-लोटा चुरानेवाले किसी छोटेसे छोटे चोरपर भी उतनी न हुई होगी।

एक दिनकी बात है, रातके करीब आठ साढ़े-आठ बजे होंगे, हमारे घरके पास ही देखा कि गैसपोस्टके नीचे एक आदमी खडा हुआ है; और बीच-बीचमें बेमतलब उत्सुक होकर वह एक ही जगह इधरसे उधर चक्कर लगा रहा है। उसे देखकर मुझे जरा भी सन्देह न रहा कि वह किसी-न-किसी गुप्त षडयन्त्रमे लगा हुआ है। अपनेको अँधेरेमें छिपाते हुए मैंने उसका चेहरा खूब अच्छी तरह देख लिया, कम उमर और देखनेमें सुडौल सुन्दर था। मैं मन ही मन कहने लगा, षड़यन्त्र करनेकी यही तो ठीक अवस्था है, चेहरा भी बिलकुल अनुकूल पड़ता है; क्योंकि अकसर देखा गया है कि जिनका अपना चेहरा ही सबसे बढ़कर खिलाफ गवाह का काम करता है वे सब तरहके अपराधोंसे बचकर निकलना चाहते हैं; अच्छा काम करके वे निष्फल हो सकते हैं, किन्तु बुरा काम करके सफलता पाना भी उनके लिए दुराशा है। देखा कि छोकड़ेका चेहरा ही उसकी सबसे बड़ी बहादुरी है।

इसके लिए बहुत देर तक मन-ही-मन मैने उसकी तारीफ की। भीतरसे मेरा जी कहने लगा, तारीफ तो तब है जब भगवानने इसे जो यह दुर्लभ सुविधा दी है उसे यह पूरी तरह काममे लगा सके। तब कहूंगा, साबाश !

मै अँधेरेसे निकलकर उसके सामने जा पहुंचा ; और उसकी पीठपर एक थपकी जमाकर बोला—"कहिये, अच्छे तो हैं ?" वह उसी क्षण जोरसे चौंक पड़ा, चेहरा पड गया सफेद फक। मैने कहा—"माफ कीजियेगा, गलती हो गई, मैने समझा था कि–"

मैने कुछ भी गलती नहीं की थी, जिसे समझा था वही था वह। लेकिन इतना ज्यादा चौंक पड़ना उसके लिए ठीक नहीं था। इससे मै ही कुछ दुःखित हुआ ; अपने शरीरपर उसका और भी ज्यादा दखल होना चाहिए था। लेकिन असल बात यह है कि श्रेष्ठताका पूरा आदर्श अपराधियोंमे भी मुश्किलसे पाया जाता है। चोरको भी सर्वश्रेष्ठ चोर बनानेमे प्रकृति कंजूसी किया करती है।

मै फिर उसकी आँखोंसे ओझल हो गया। देखा कि वह गैसपोष्ट छोड़कर चला गया। मै उसका पीछा करने लगा। देखा कि चलते-चलते वह गोलदिग्घीके बागमे घुस गया, और तालाबके किनारे घासपर जाकर चित पड रहा। मैने सोचा कि तरकीब सोचनेके लिए जगह हो तो ऐसी हो ! कहॉ गैसपोष्टके नीचेका फुटपाथ और कहॉ उपवनके सरोवर-तटकी तृणशय्या ! कोई अगर सन्देह भी करे तो ज्यादासे ज्यादा इतना कर सकता है कि लड़का अँधेरे आकाशमें प्रेयसीका मुखचन्द्र अंकित करके कृष्णपक्षकी

रातकी कमी पूरी कर रहा है। कुछ भी कहिये, लड़केके प्रति मेरा मन उत्तरोत्तर आकृष्ट होने लगा।

बहुत खोजके बाद मैंने उसके घर यानी प्राइवेट होस्टलका पता लगाया। नाम है मन्मथकुमार, कालेजमे पढ़ता है; परीक्षामे फेल होकर गरमियोंकी छुट्टीमे इधर-उधर घूम-फिर रहा था। उसके होस्टलके सहवासी लड़के प्रायः सभी अपने-अपने देश चले गये हैं। लम्बी छुटियोंमें सभी विद्यार्थी होस्टल छोड़कर घर भाग जाया करते है, मालूम नहीं इस लड़केके पीछे कौनसा दुष्टग्रह पड़ गया है जो छुट्टी नहीं दे रहा है। मैंने तय कर लिया कि किसी भी तरह हो उस दुष्टग्रहका पता लगाकर ही छोडूंगा।

मै भी विद्यार्थी बनकर होस्टलमे दाखिल हो गया। पहले दिन जब उसने मुझे देखा तब न-जाने कैसे तो उसने मेरे मुँहकी तरफ देखा, मेरी कुछ समझमे न आया। ऐसा लगा जैसे वह बड़े-भारी ताज्जुबमे पड़ गया हो और मेरे मनकी बात ताड़ गया हो। मैं समझ गया कि हाँ, है तो शिकारीके लायक शिकार! इसे सीधी तरहसे चटसे काबूमे नहीं लाया जा सकता।

लेकिन मजा यह कि जब मैंने उसे प्रणय-बंधनमे बाँधना चाहा तो उसने पकड़ाई देनेमे जरा भी दुविधा नहीं की। मगर मै ताड़ गया कि वह भी मुझे सुतीक्ष्णदृष्टिसे देखता है, वह भी मुझे जानना चाहता है। मनुष्यचरित्रके प्रति इस तरहका सदा-सतर्क सजग कुतूहल होना यह उस्तादोंका लक्षण है। इतनी कम उमरमे ऐसी पैनी चतुराई देखकर मन ही मन मै बहुत ही खुश हुआ।

मनमें सोचने लगा, हमारे बीचमे अब एक रमणी आनी

चाहिए, उसके बिना इस असाधारण अकालधूर्त लड़केका हृदय द्वार खुलना मुश्किल ही है।

एक दिन गद्गद कंठसे मैंने उससे कहा—"दोस्त, आज तुमसे मैं अपनी एक मनकी वात कहता हूं। एक लड़की है, उसे मैं बहुत चाहता हूं, पर वो मुझे नहीं चाहती।"

पहले तो वह कुछ चौंका, फिर मेरे मुँहकी तरफ देखकर मुसकराता हुआ बोला—"यह कोई ऐसा हादसा नहीं जो न होता हो। इस तरहका मजा करनेके लिए ही तो कौतुकप्रिय विधाताने नर-नारीका भेद किया है।"

मैंने कहा—"तुमसे मैं सलाह चाहता हूं; और मदद भी?"

वह राजी हो गया।

मैंने वना-वनाकर वहुत-सा इतिहास कह डाला। वह आग्रह और कुतूहलके साथ सब सुनता रहा, लेकिन ज्यादा कुछ बोला नहीं। मेरी धारणा थी कि किसी साथीसे मुहब्बतकी, खासकर इस तरहके गर्हित प्रेमकी वात इस तरह दिल खोलकर कही जाय तो उससे गहरी दोस्ती हो जाती है और वह वहुत तेजीसे आगे वढ़ने लगती है; लेकिन वर्तमान कार्यक्षेत्रमें उसका कोई लक्षण ही नहीं दिखाई दिया। मन्मथ पहलेकी अपेक्षा कहीं ज्यादा चुपकी साध गया, साथ ही ऐसा मालूम हुआ जैसे मेरी सब बातें उसने अपने मनमें गूँथके रख ली हों। लड़केपर मेरी इतनी ज्यादा श्रद्धा हो गई कि जिसकी हद नहीं।

इधर, मन्मथ रोजमर्रा दरवाजा वन्द करके क्या-क्या गुप्त कार्रवाई करता रहता है और उसका षड़यन्त्र किस तरह कहाँ तक

आगे बढ़ रहा है, मै इसका कुछ पता न लगा सका; और इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि जरूर वह आगे बढ़ रहा है। उसका चेहरा देखते ही यह बात साफ समझमे आ जाती कि वह किसी गहरे मामलेमें लगा हुआ है और वह मामला अब बिलकुल पक चुका है। मैंने डुप्लिकेट चाभी बनाकर उसका डेस्क खोलकर देखा है, उसमे एक अत्यन्त दुर्बोध कविताओंकी कापी, कालेजके लक्चरोंके नोट्स और घरवालोंकी मामूली चिट्ठियोंके सिवा और कुछ भी नहीं मिला। घरकी चिट्ठियोंसे सिर्फ इतना ही पता चला कि घरवाले उसे देश आनेके लिए हर चिट्ठीमे बार-बार अनुरोध कर रहे हैं; फिर भी वह जा नहीं रहा है। आखिर क्यों? इसका जरूर कोई जबरदस्त कारण होगा। अगर वह न्यायसंगत होता तो जरूर किसी-न-किसी दिन आपसकी बातचीतमे उसका परदाफाश होता। लेकिन बात बिलकुल उलटी थी; और इसीलिए उस छोकड़ेकी गतिविधि और इतिहास मेरे लिए इतना ज्यादा औत्सुक्यजनक हो उठा कि जिसका ठीक नही। जिस अ-सामाजिक मनुष्य-सम्प्रदायने सुरंगमें छिपकर इस महान मनुष्य-समाजको हमेशा नीचेकी तरफसे हिला रखा है, यह बालक उसी विश्वव्यापी अतिप्राचीन महान जातिका एक अङ्ग है, यह कोई मामूली स्कूलका छात्र नहीं, यह संसारकी छातीपर विहार करनेवाली सत्यानाशिनीका प्रलयका सहचर है, आधुनिककालका चश्मा पहनकर निरीह छात्रके भेषमे कॉलेजमे पढ़ रहा है। अगर यह नर-मुण्डधारी कापालिकके भेषमे रहता तो उसकी भैरवता मेरे लिए और भी भयङ्कर नहीं होती। सचमुच मेरी उसपर काफी श्रद्धा हो गई।

अन्तमे सशरीरा रमणीकी अवतारणा करनी पड़ी। पुलिसकी वेतनभोगी हरिमती मेरी सहायक हुई। मन्मथको मैने कह दिया कि मै इसी हरिमतीका अभागा प्रेमी हू। और हरिमतीको लक्ष्य करके कुछ दिनों तक मै उसके साथ गोलदिग्घी जा-जाकर तालाबके किनारे घासपर बैठकर गद्गद कंठसे "चॉद तू है, चॉदनी है" कविता बार-बार पढता रहा, और हरिमती भी कुछ भीतरसे और कुछ हाव-भावसे जताती रही कि उसने अपना हृदय मन्मथको दे दिया है। लेकिन आशानुरूप कुछ भी फल नहीं हुआ। मन्मथ दूरसे ही निर्लिप्त होकर कौतुकके साथ सब कुछ देखता रहा।

इस बीचमे, एक दिन दोपहरके वक्त देखा कि उसके कमरेके एक कोनेमे एक फटी हुई चिट्ठी पडी है। मैने सब टुकडोंको उठाकर उन्हे यथास्थान जोडकर पढनेकी कोशिश की; पर सिर्फ इतना ही अधूरा वाक्य पढनेमे आ सका—"आज शामके बाद सात बजे छिपकर मै तुम्हारे यहाँ –" बाकीका हिस्सा ढूंढनेके लिए बहुत कोशिश की, पर मिला नही।

फिर भी, मेरा अन्तःकरण पुलकित हो उठा। जमीनमेंसे किसी विलुप्त वंशके प्राचीन प्राणीका एक हाड़ मिल जानेपर जीवतत्त्वके इतिहासकारकी कल्पना जैसे आनन्दके मारे सजग हो उठती है, मेरी भी ठीक वैसी ही हालत हो गई।

मुझे मालूम था कि आज रातको दस बजे हमारे यहाँ हरिमतीके आनेकी बात है—इस बीचमे सात बजेका यह मामला कहांसे आनेवाला है? लड़केकी हिम्मत और बुद्धिकी तारीफ करनी पडेगी। सचमुच अगर किसी गुप्त अपराधका काम करना

हो, तो घरमें जिस दिन कोई खास झंझट हो उसी दिन मौका देखकर करना ही अच्छा है। इसमें पहली बात तो यह है कि मुख्य विषयपर लोगोंका ध्यान आकृष्ट रहता है; दूसरे, जिस दिन जहाँ कोई खास बात होनेवाली हो उस दिन वहाँ कोई जान-बूझकर गुप्त कार्रवाई करेगा, यह बात किसीके दिमागमें ही न आयेगी।

सहसा मेरे मनमें सन्देह हुआ कि मेरे साथ इस नई मित्रता और हरिमतीके साथ इस प्रेमाभिनयको भी मन्मथने अपनी कार्य-सिद्धिका जरिया कर लिया है, यही वजह है कि न तो वह अपनेको हममें मिलाता ही है और न अलग ही करता है। वह समझ गया है कि हमलोगोंका आचरण उसकी गुप्त कार्रवाइयोंके लिए परदाका काम कर रहा है, और इससे और सबोंकी यही धारणा रहेगी कि वह हम ही लोगोंको लेकर व्यस्त है। और इस भ्रमको वह दूर नहीं करना चाहता।

अब जरा युक्तियोंपर भी गौर कीजिये। जो परदेशी विद्यार्थी छुट्टियोंमें अपने घरवालोंके अनुनय-विनयकी जरा भी परवाह न करके सूने होस्टलमें अकेला पड़ा रहता है उसके विषयमें किसीको भी यह सन्देह नहीं हो सकता कि निर्जन स्थानकी उसे खास जरूरत है; और, मैं उसके कमरेमें आकर उसकी निर्जनताको नष्ट कर रहा हूं और ऊपरसे एक महिलाको लाकर एक तरहका नया उपद्रव ही खड़ा कर रहा हूं, मगर फिर भी वह नाखुश नहीं होता! और यह बिलकुल सच है कि हरिमतीपर उसकी रंचमात्र भी आसक्ति नहीं, और न मुझसे कोई खास दिलचस्पी है। और तो क्या, मैंने उसकी सदा-सतर्क अवस्थाका बार-बार अध्ययन

करके यही पाया है कि हम दोनोंके प्रति उसकी घृणा क्रमशः मानो बढती ही जाती है।

इसका एकमात्र तात्पर्य यही है कि स-जनताकी सफाई रखते हुए निर्जनताकी सहूलियत पाना हो तो उसका सबसे अच्छा तरीका है मुझ जैसे नव-परिचित आदमीको पास रखना ; और, किसी भी विषयमें एकाग्र मनसे लिप्त होनेके लिए महिलासे बढ़कर आसान बहाना और-कुछ हो ही नहीं सकता। इसके पहले, मन्मथका आचरण जैसा निरर्थक और सन्देहजनक था, हमारे आगमनके बाद फिर वैसा नहीं रहा। लेकिन, इतनी दूरकी बात चुटकियोंमें सोचकर तय कर लेना आसान काम नहीं। उसकी इस विलक्षण उपस्थित-बुद्धिको देखकर मैं मुग्ध हो गया ; सोचने लगा, हमारे देशमें ऐसे-ऐसे दूरदर्शी प्रत्युत्पन्नमति बालक भी पैदा होते हैं! मारे उत्साहके मेरा हृदय भर आया। मन्मथ अगर कुछ खयाल न करता तो शायद मैं उसे दोनों हाथोंसे खींचकर अपनी छातीसे लगा लेता।

उस दिन मन्मथके साथ भेंट होते ही मैंने उससे कहा—"आज शामको सात बजे मैंने तुम्हें होटलमें खिलाने-पिलानेका निश्चय किया है।" सुनकर वह कुछ चौंक-सा पड़ा, बादमें अपनेको सम्हालकर बोला—"आज माफ करो भाई, मेरी पाकस्थलीकी हालत आज बड़ी शोचनीय है।" होटलका खाना खानेमें मन्मथकी अभिरुचिको कभी भी किसी कारणसे विमुख होते नहीं देखा, फिर आज क्या बात है! मैं फौरन ताड़ गया कि आज उसकी अन्तरिन्द्रिय जरूर किसी दुरूह दशामें उलझी हुई है।

वैसे मैं शामको तरफ होस्टलमे नहीं रहता, मगर उस दिन मैंने बातोंका ऐसा ताँता बाँध दिया कि उठनेका मौका ही नहीं आने दिया। मन्मथ भीतर-ही-भीतर अत्यन्त चंचल होने लगा। मेरी हर बातपर उसने सम्मति देना शुरू कर दिया, किसी तर्कका कुछ भी जवाब नहीं दिया; और अन्तमें घड़ीकी तरफ देखकर व्याकुल-चित्तसे खड़ा होकर बोला—"हरिमतीको आज लाने नहीं जाना है क्या?" मैंने चौंककर कहा—"अरे हाँ, मैं तो बिलकुल भूल ही गया था। अब एक काम करो, तुम खाना-वाना बनाकर तैयार रखो, मैं ठीक साढ़े दस बजे उसे यहाँ ले आऊँगा।" और उठके चल दिया।

खुशीका एक नशा-सा मेरे रग-रगमे दौड़ने लगा। शामके 'सात बजे' पर मन्मथकी जितनी और जैसी उत्सुकता थी, मेरी उत्सुकता उससे किसी भी हालतमें कम नहीं थी। मै होस्टलके पास ही एक जगह छिप गया और प्रेयसी-समागमोत्कंठित प्रणयीकी तरह क्षण-क्षणमे घड़ी देखने लगा। गोधूलिका अन्धकार जब क्रमशः घना हो आया और सड़कोंकी बत्तियाँ जलने लगीं, तब देखा कि एक बन्द पालकी होस्टलके दरवाजेसे भीतर घुस रही है। आखिर उस बन्द पालकीके अन्दर क्या है, आँसुओंमे डूबा हुआ एक घूँघट-शुदा पाप, एक मूर्तिमती ट्रैजिडी कॉलेजके छात्र-निवासमे कुछ उड़िया वाहकोंके कंधेपर सवार होकर 'हॉई-हुँई' बोलती हुई इतनी आसानीसे घुसी जा रही है! कल्पना करते हुए मेरे रोंगटे खड़े हो गये, और सारे शरीरमे एक तरहका अपूर्व पुलकका संचार होने लगा।

फिर मुझसे रहा नहीं गया। समय नष्ट न करके तुरत होस्टलमें घुसा, और धीरे धीरे सीढ़ी तय करके ऊपर पहुंचा। इच्छा थी कि छिपकर सब देखता रहूंगा, पर दुर्भाग्यवश मेरी इच्छा पूरी नहीं हुई। कारण, मन्मथ सीढ़ीके सामनेवाले कमरेमें ही इधर ही को मुंह किये बैठा था; और दूसरी तरफ बैठी थी एक घूंघटवाली नारी। दोनों मृदु-मन्द स्वरमे बातें कर रहे थे। जब देखा कि मन्मथने मुझे देख लिया है तो जल्दीसे कमरेमे जाकर मुझे कहना ही पडा—"टेबिलपर घड़ी पडी छोड गया था, सो लेने आया हूं।" मन्मथ ऐसा भौचक्का-सा हो गया कि जिसका ठीक नहीं। मालूम हुआ, अभी गश खाकर जमीनपर गिर जायगा। मै कौतुक और खुशीमे फुला न समाया, व्यग्रताके साथ बोला—"क्यों, ऐसे क्यों हो गये, तबीयत कुछ खराब है क्या ?" उससे कुछ जवाब देते न बना। तब फिर मैंने कठपुतली-सी स्थिर बैठी हुई उस घूँघटवाली नारीकी तरफ मुखातिब होकर पूछा—"आप मन्मथकी कोई लगती हैं क्या ?" कुछ भी उत्तर नहीं मिला; लेकिन देखा कि वे मन्मथकी कोई भी नहीं लगतीं, मेरी ही स्त्री लगती हैं! उसके बाद क्या हुआ, सो सभी जान सकते है।

बस, यही है मेरे जासूसी-जीवनकी पहली तारीफ।

× × ×

कुछ देर बाद मैंने अपने जासूस-साथी महिमचन्द्रसे कहा—"मन्मथके साथ तुम्हारी स्त्रीका सम्बन्ध समाज-विरुद्ध नहीं भी हो सकता है।"

महिमने कहा—"बात तो ऐसी ही है। मेरी स्त्रीके बकसमेंसे मन्मथकी यह चिट्ठी मैंने ढूंढ़ निकाली है।" कहते हुए एक चिट्ठी उसने मेरे हाथमें दी, जो नीचे उद्धृत की जाती है :—

सुचरितासु,

अभागे मन्मथकी बात इतने दिनों बाद तुम शायद भूल गई होगी। बचपनमें जब मैं अपनी ननसाल काजीबाड़ी जाता था तब अकसर वहाँ तुम्हारे घर जाकर मैं तुमसे तरह-तरहके खेल खेला करता था। हम दोनोंका वह खेल-घर और खेलका सम्बन्ध आज टूट चुका है। तुम जानती हो या नहीं, मैं नहीं कह सकता, एक समय था जब धीरजका बाँध तोड़कर और हया-शरमकी खोपड़ी फोड़कर मैंने तुमसे व्याह करनेका इरादा जाहिर किया था, और उसके लिए काफी कोशिश भी की थी। लेकिन तुम्हारी हमारी उमर एकसी होनेसे दोनों पक्षके बुजुर्ग किसी भी हालतमे इस सम्बन्धके लिए राजी नहीं हुए।

उसके बाद तुम्हारा व्याह हो गया। चार-पाँच साल तक तुम्हारी कुछ खबर ही न पा सका। आज पता चला कि तुम्हारे पति पुलिसमे काम करते है, और पाँच महीने हुए, यहीं कलकत्तामें उनका तबादला हुआ है; और आज ही मैंने तुम्हारे घरका पता लगा लिया।

तुम्हारे साथ मिलनेकी दुराशा मैं नहीं रखता; और यह अन्तर्यामी ही जानते है कि तुम्हारे गार्हस्थ्य-सुखमे एक ऊधमकी तरह घुस पड़नेकी साजिश भी मेरे मनमें नहीं है। शामके वक्त

तुम्हारे घरके सामनेवाले फुटपाथपर एक गैस-पोस्टके नीचे सूर्योपासककी तरह मैं खड़ा रहता हूं, और तुम रोज नियमितरूपसे ठीक साढ़े सात बजे अपने ऊपरके दक्षिणके कमरेमें एक मिट्टीके तेलकी बत्ती जलाकर खिडकीके सामने रखती हो; उस समय क्षण-भरके लिए तुम्हारी दीपालोकित प्रतिमा मेरी आँखोंमें उद्भासित होकर समा जाती है। बस, तुम्हारे विषयमें मेरा सिर्फ यही एकमात्र अपराध है।

इस बीचमें घटनाचक्रसे तुम्हारे पतिके साथ मेरा परिचय हो गया; और क्रमशः घनिष्ठता भी हो चुकी है। उनका चरित्र जैसा मैंने देखा, उससे समझना मुश्किल न रहा कि तुम्हारा जीवन सुखी नहीं है। तुमपर मेरा किसी तरहका सामाजिक अधिकार नहीं है, किन्तु जिस विधाताने तुम्हारे दुःखको मेरे दुःखमें परिणत कर दिया है, खुद उन्हीने उस दुःखको दूर करनेका भार मेरे ऊपर छोड दिया है।

इसलिए, मेरी गुस्ताखी माफ करके शुक्रवार शामको ठीक सात बजे गुप्तरूपसे पालकीमें बैठकर एक बार बीस मिनटके लिए मेरे होस्टलमें आ सको तो मैं तुम्हे तुम्हारे पतिके सम्बन्धमें कुछ गुप्त बातें बताना चाहता हूं। अगर विश्वास न हो या सहन न कर सको, तो इस विषयके सबूत भी मैं तुम्हे दिखा सकता हूं। और साथ ही कुछ सलाह भी मैं तुम्हे देना चाहता हूं। मैं भगवानको हृदयमें रखकर आशा करता हूं कि उस सलाहके अनुसार चलनेसे एक-न-एक दिन तुम जरूर सुखी हो सकोगी।

मेरा उद्देश्य बिलकुल ही निःस्वार्थ हो, ऐसा मैं नहीं कह

सकता। क्षण-भरके लिए मैं तुम्हें सामने देखूंगा, तुम्हारी बात सुनूँगा और तुम्हारे चरणोंके स्पर्शसे अपनी इस कोठरीको हमेशाके लिए सुख-स्वप्नसे भर दूंगा, बस, इतनी-सी अभिलाषा मेरे हृदयमे है। अगर तुम मुझपर विश्वास न कर सको और इतने-से सुखसे भी मुझे तुम वञ्चित करना चाहो, तो वैसा लिख भेजना। मै उसके उत्तरमें सब बातें चिट्ठीमें ही लिख भेजूँगा। और अगर चिट्ठी लिखनेका विश्वास न हो, तो मेरा यह पत्र ही तुम अपने पतिको दिखा देना। उसके बाद मुझे जो-कुछ कहना है सो उन्हींसे कह दूंगा।

नित्य-शुभाकांक्षी
मन्मथकुमार मजूमदार

काबुलवाला

मेरी पाँच बरसकी छोटी लड़की मिनीसे घड़ी-भर भी बात बिना किये नहीं रहा जाता। संसारमे जन्म लेनेके बाद भाषा सीखनेमें उसने सिर्फ एक ही साल लगाया होगा। उसके बादसे, जितनी देर तक वह जागती रहती है, उस समयका एक क्षण भी वह मौनमें नष्ट नहीं करती। उसकी मा अकसर डाटकर उसका मुँह बन्द कर देती है, पर मुझसे ऐसा नहीं होता। मिनीका चुप रहना मुझे ऐसा अस्वाभाविक लगता है कि मुझसे वह ज्यादा देर तक सहा नहीं जाता; यही वजह है कि मेरे साथ उसकी बातचीत कुछ ज्यादा उत्साहके साथ होती रहती है।

सवेरे मैंने अपने उपन्यासके सत्रहवें परिच्छेदमें हाथ लगाया ही था कि इतनेमें मिनीने आकर शुरू कर दिया—"बापूजी, रामदयाल दरबान 'काक'को+ 'कौआ' कहता था, वो कुछ जानता नहीं, न बापूजी ?"

दुनियाकी भाषाओंकी विभिन्नताके विषयमें मेरे कुछ कहनेके पहले ही उसने दूसरा प्रसंग छेड़ दिया—"देखो बापूजी, भोला कहता था, 'आकाशमें हाथी सूँड़से पानी फेंकता है, इसीसे बरसा होती है' ! अच्छा बापूजी, भोला झूठ-मूठको बकता बहुत है, न ? खाली बक-बक किया करता है, रात दिन बकता है !"

इस विषयमें मेरी रायके लिए जरा भी इन्तजार न करके चटसे वह बड़े नरम स्वरमें एक जटिल सवाल पूछ बैठी—"बापूजी, मा तुम्हारी कौन लगती है ?"

मन-ही-मन मैंने कहा, 'साली', और मुँहसे बोला—"मिनी, तू जा, भोलाके साथ खेल जाकर। मुझे अभी काम है, अच्छा !"

तब उसने मेरी टेबिलके बगलमें पैरोंके पास बैठकर अपने दोनों घुटनों और हाथोंको हिला-हिलाकर बड़ी जल्दी-जल्दी मुँह चलाकर 'अटकन-बटकन दही-चटाके' खेल शुरू कर दिया, जब कि मेरे उपन्यासके परिच्छेदमें प्रतापसिंह उस समय कांचनमालाको लेकर अँधेरी रातमें कारागारके ऊँचे झरोखेमेंसे नीचे बहती हुई नदीमें कूद रहे थे।

+ बंगलामें 'कौआ'को 'काक' कहते हैं, इसलिए बङ्गाली लड़कीकी दृष्टिमें दरबान गलत बोल रहा था।

मेरा घर सड़कके किनारेपर था। सहसा मिनी 'अटकन-बटकन' खेल छोड़कर खिड़कीके पास दौड़ी गई, और बड़ी जोरसे चिल्लाने लगी—"काबुलवाला, ओ काबुलवाला!"

मैले-कुचैले ढीले कपड़े पहने, सिरपर साफा बाँधे, कंधेपर मेवोंकी झोली लटकाये, हाथमे दो-चार अंगूरकी पिटारियाँ लिये एक लम्बा-सा काबुली धीमी चालसे सड़कपर जा रहा था। उसे देखकर मेरी कन्याके मनमे कैसा भावोदय हुआ, यह बताना कठिन है। उसने जोरोंसे उसे पुकारना शुरू कर दिया। मैंने सोचा, अभी झोली कंधेमे डाले एक आफत आ खड़ी होगी, और मेरा सत्रहवाँ परिच्छेद आज पूरा होनेसे रह जायगा।

लेकिन मिनीके चिल्लानेपर ज्यों ही काबुलीने हँसते हुए उसकी तरफ मुँह फेरा और मेरे मकानकी तरफ आने लगा, त्यों ही वह जान लेकर भीतरकी ओर भाग गई। फिर उसका पता ही नहीं लगा कि कहाँ गायब हो गई। उसके मनमे एक अन्धविश्वास-सा बैठ गया था कि उस झोलीके अन्दर तलाश करनेपर उस जैसी और भी दो-चार जीती जागती लड़कियाँ निकल सकती हैं।

इधर काबुलीने आकर मुसकराते हुए मुझे सलाम किया और खड़ा हो गया। मैंने सोचा, यद्यपि प्रतापसिंह और कांचनमाला की हालत अत्यन्त संकटापन्न है, फिर भी घरमे बुलाकर इससे कुछ न खरीदना अच्छा न होगा।

कुछ सौदा खरीदा गया। उसके बाद उससे इधर-उधरकी बातें करने लगा। अब्दुर रहमान, रूस, अंग्रेज, सीमान्त-रक्षा इत्यादि विषयोंमें गप-शप होने लगी।

अन्तमे, उठके जाते समय उसने अपनी खिचड़ी भाषामें पूछा–"बाबू शाब, तुम्हारी लड़की कहाँ गई ?"

मैंने मिनीके मनसे फजूलका डर दूर करनेके इरादेसे उसे भीतरसे बुलवा लिया। वह मुझसे बिलकुल सटकर काबुलीके मुँह और झोलीकी तरफ सन्दिग्ध दृष्टिसे देखती हुई खड़ी रही। काबुलीने झोलीमेंसे किसमिस और खूबानी निकालकर देना चाहा; पर उसने कुछ भी नहीं लिया; और दूने सन्देहके साथ मेरे घुटनोंसे चिपट गई। पहला परिचय इस तरह हुआ।

कुछ दिन बाद, एक दिन सवेरे किसी जरूरी कामसे मैं बाहर जा रहा था। देखूँ तो, मेरी दुहिता दरवाजेके पास बेञ्चपर बैठी हुई काबुलीसे खूब बातें कर रही है; और काबुली उसके पैरोंके पास बैठा-बैठा मुसकराता हुआ सब ध्यानसे सुन रहा है और बीच-बीचमे प्रसंगानुसार अपना मतामत भी खिचड़ी भाषामे व्यक्त करता-जाता है। मिनीको अपने पाँच सालके जीवनकी जानकारीमें 'बापूजी'के सिवा ऐसा धीरजवाला श्रोता शायद ही कभी मिला हो। देखा तो, उसका छोटा-सा आँचल बादाम-किसमिससे भरा हुआ है। मैंने काबुलीसे कहा—"उसे यह-सब क्यों दे दिया। अब मत देना।" कहकर जेबमेंसे एक अठन्नी निकालकर उसे दे दी। उसने बिना किसी सङ्कोचके अठन्नी लेकर अपनी झोलीमें डाल ली।

घर लौटकर देखता हूं तो उस अठन्नीने बड़ा-भारी उपद्रव खड़ा कर दिया है।

मिनीकी मा एक सफेद चमकीला गोलाकार पदार्थ हाथमे लिये

डपटकर मिनीसे पूछ रही हैं—"तैंने यह अठन्नी पाई कहाँसे ?"

मिनीने कहा—"काबुलवालेने दी है।"

"काबुलवालेसे तैंने अठन्नी ली कैसे, बता ?"

मिनीने रोनेकी तैयारी करके कहा—"मैंने माँगी नहीं, उसने अपने-आप दी है।"

मैंने आकर मिनीकी उस आसन्न विपत्तिसे रक्षा की, और उसे बाहर ले आया।

मालूम हुआ कि काबुलीके साथ मिनीकी यह दूसरी मुलाकात हो, सो नहीं। इस बीचमे वह रोज आया है और पिस्ता-बादाम की रिश्वत दे-देकर मिनीके छोटेसे हृदयपर उसने काफी अधिकार जमा लिया है।

देखा कि इन दोनों मित्रोंमे कुछ बँधी-हुई बातें और हँसी प्रचलित है। जैसे, रहमतको देखते ही मेरी लड़की हँसती हुई पूछेगी, 'काबुलवाला, ओ काबुलवाला, तुम्हारी झोलीके भीतर क्या है ?'

रहमत एक अनावश्यक चन्द्रबिन्दु जोड़कर हँसता हुआ उत्तर देता, 'हाँथी !' उसके परिहासका मर्म अत्यन्त सूक्ष्म हो, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, फिर भी, इससे दोनोंको जरा विशेष कौतुक मालूम होता, और शरद्ऋतुके प्रभातमे एक सयाने और एक बच्चेकी सरल हँसी देखकर मुझे भी बड़ा अच्छा लगता।

उनमे और-भी एकआध बात प्रचलित थी। रहमत मिनीसे कहता, 'लल्ली, तुम ससुराल कभी नहीं जाना, अच्छा !'

हमारे यहाँकी लड़कियाँ जन्मसे ही 'ससुराल' शब्दसे परिचित

रहती है, किन्तु हमलोग जरा-कुछ नये जमानेके होनेके कारण जरा-सी बच्चीको ससुरालके सम्बन्धमे विशेष ज्ञानी नही बना सके थे, इसलिए रहमतका अनुरोध वह साफ-साफ नहीं समझ पाती थी, किन्तु फिर भी किसी बातका जवाब बिना दिये चुप रहना उसके स्वभावके बिलकुल विरुद्ध था। उलटी वह रहमतसे ही पूछती. 'तुम सासुराल जाओगे?'

रहमत काल्पनिक ससुरके लिए अपना प्रकांड मोटा घूँसा तानकर कहता, 'हम ससुरको मारेगा !'

सुनकर मिनी 'ससुर' नामक किसी अपरिचित जीवकी दुरवस्थाकी कल्पना करके खूब हँसती।

देखते-देखते शुभ्र शरद्‌ऋतु आ पहुंची। प्राचीनकालमें इसी समय राजा लोग दिग्विजयके लिए निकलते थे। मै कलकत्ता छोड़कर कभी कही भी नहीं गया, शायद इसीलिए मेरा मन पृथ्वी-भरमे घूमा करता है। यानी, मै अपने घरके कोनेमें चिर-प्रवासी हू, बाहरकी पृथ्वीके लिए मेरा मन सर्वदा चंचल रहता है। किसी विदेशका नाम सुनते ही मेरा चित्त वहींके लिए दौड़ने लगता है। इसी तरह विदेशी आदमीको देखते ही तुरन्त मेरा मन नदी-पर्वत-वनके बीचमे एक कुटीरका दृश्य देखने लगता है और एक उल्लासपूर्ण स्वाधीन जीवन-यात्राकी बात कल्पनामे जाग उठती है।

इधर देखो तो, मै ऐसा स्थावर-प्रकृतिका हू कि अपना कोना छोड़कर घरसे बाहर निकलनेमे मेरा सिर कटता है। यही वजह है कि सवेरेके वक्त अपने छोटेसे कमरेमे टेबुलके सामने बैठकर उस

काबुलीसे गप्पें करके मैं बहुत-कुछ भ्रमणका काम निकाल लिया करता हूं। मेरे सामने काबुलका पूरा चित्र खिंच जाता। दोनों तरफ ऊबड़खाबड़ लाल-लाल ऊँचे दुर्गम पहाड़ हैं और रेगिस्तानी रास्ता, उनपर लदे-हुए ऊँटोंकी कतार जा रही है। साफा बाँधे हुए सौदागर और मुसाफिर कोई ऊँटपर सवार हैं तो कोई पैदल ही जा रहे हैं, किसीके हाथमें बरछा है तो कोई बाबा आदमके जमानेकी पुरानी बन्दूक लिये हुए हैं। मेघ-गर्जनके स्वरमें काबुली लोग अपनी खिचड़ी भाषामें अपने देशकी बातें कर रहे हैं।

मिनीकी मा स्वभावकी बड़ी वहमी है। रास्तेमें कोई शोरगुल हुआ नहीं कि उसने समझ लिया कि दुनिया-भरके सारे मतवाले शराबी हमारे ही मकानकी तरफ दौड़े आ रहे हैं। उसकी समझसे यह दुनिया इस छोरसे लेकर उस छोर तक चोर, डकैत, मतवाले, शराबी, साँप, बाघ, मलेरिया, सूँओं, तिलचट्टे और गोरोंसे भरी पड़ी है। इतने दिनसे (बहुत ज्यादा दिन नहीं हुए) इस दुनियामें रहते हुए भी उसके मनकी यह विभीषिका दूर नहीं हुई।

रहमत काबुलीकी तरफसे वह पूरी तरह निश्चिन्त नहीं थी। उसपर विशेष दृष्टि रखनेके लिए मुझसे वह बार-बार अनुरोध करती रहती। जब मैंने उसका सन्देह हँसीमें उड़ा देना चाहा, तो वह मुझसे एकसाथ कई सवाल कर बैठती—'क्या कभी किसीका लड़का चुराया नहीं गया?' 'क्या काबुलमें गुलाम नहीं बेचे जाते?' 'एक लम्बे-तगड़े-मोटे काबुलीके लिए एक छोटेसे बच्चेको चुरा ले जाना क्या बिलकुल असम्भव है?' इत्यादि-इत्यादि।

मुझे मानना पड़ता कि यह बात बिलकुल असम्भव हो, सो बात नहीं; पर विश्वास-योग्य नहीं। विश्वास करनेकी शक्ति सबमें समान नहीं होती, इसलिए मेरी स्त्रीके मनमें डर रह ही गया; लेकिन सिर्फ इसीलिए बिना किसी दोषके रहमतको अपने मकानमें आनेसे मैं मना न कर सका।

—

हर साल माघ महीनेके लगभग रहमत देश चला जाता है। इस समय वह अपने गाहकोंसे रुपये वसूल करनेके काममें बड़ा उद्विग्न रहता है। उसे घर-घर घूमना पड़ता है, मगर फिर भी वह मिनीसे एक बार मिल ही जाता है। देखनेमें तो ठीक ऐसा ही लगता है कि दोनोंमें मानो कोई षड्यन्त्र चल रहा हो। जिस दिन वह सवेरे नहीं आ पाता उस दिन देखूं तो शामको हाजिर है। अँधेरेमें घरके कोनेमें उस ढीले-ढाले जामा-पायजामा-पहने झोला-झोलीवाले लम्बे-तगड़े आदमीको देखकर सचमुच ही मनमें सहसा एक आशङ्का-सी पैदा हो जाती है।

परन्तु, जब देखता हूं कि मिनी 'काबुलवाला, ओ काबुलवाला' पुकारती हुई हँसती-हँसती दौड़ी आती है और दो जुदा-जुदा उमरके असम मित्रोंमें वही पुराना सरल परिहास चलने लगता है तब मेरा सम्पूर्ण हृदय प्रसन्न हो उठता है।

एक दिन सवेरे मैं अपने छोटे कमरेमें बैठा हुआ अपनी नई पुस्तकका प्रूफ देख रहा था। जाड़ा, विदा होनेके पहले, आज दो-तीन रोजसे खूब जोरोंसे पड़ रहा है। जहाँ देखो वहाँ जाड़ेकी ही चर्चा है। ऐसे जाड़े-पालेमें, खिड़कीमेंसे सवेरेकी घाम टेबुलके

नीचे मेरे पैरोंपर आ पड़ी तो उसकी गरमी मुझे बड़ी अच्छी मालूम देने लगी। करीब आठ बजे होंगे। सिरसे गुलूबन्द लपेटे ऊषाचरगण प्रातःभ्रमण समाप्त करके अपने-घरकी तरफ लौट रहे थे। इसी समय सड़कपर एक बड़ा-भारी हल्ला-सा सुनाई दिया।

देखूं तो, अपने उस रहमतको दो सिपाही बाँधे लिये जा रहे हैं। उसके पीछे बहुतसे कुतूहली लड़कोंका झुंड चला आ रहा है। रहमतके कुडतेपर खूनके दाग हैं और एक सिपाहीके हाथमें खूनसे सना हुआ छुरा! मैंने दरवाजेके बाहर निकलकर सिपाही को रोक लिया, पूछा—"क्या बात है?"

कुछ सिपाहीसे और कुछ रहमतके मुँहसे सुना कि हमारे पड़ोसमें रहनेवाले एक आदमीने रहमतसे एक रामपुरी चद्दर खरीदी थी। उसके कुछ रुपये उसकी तरफ बाकी थे, जिन्हें वह देनेसे नट गया। बस, इसीपर दोनोंमे बात बढ़ गई, और रहमतने निकालकर छुरा भोंक दिया।

रहमत उस झूठे बेईमान आदमीके लिए तरह-तरहकी अश्राव्य गालियाँ सुना रहा था। इतनेमे 'काबुलवाला, ओ काबुलवाला' पुकारती हुई मिनी घरसे निकल आई।

रहमतका चेहरा क्षण-भरमें कौतुक-हास्यसे प्रफुल्ल हो उठा। उसके कंधेपर आज झोली नहीं थी, इसलिए झोलीके बारेमे दोनों मित्रोंकी अभ्यस्त आलोचना न चल सकी। मिनीने आतेके साथ ही उससे पूछा—"तुम ससुराल जाओगे?"

रहमतने हँसकर कहा—"हाँ, वहीं तो जा रहा हूं!"

रहमत ताड़ गया कि उसका यह उत्तर मिनीके चेहरेपर हँसी

न ला सका, और तब उसने हाथ दिखाकर कहा—"ससुरको मारता, पर क्या करूं, हाथ बँधे हुए है।"

छुरा चलानेके कसूरमें रहमतको कई सालकी सजा हो गई।

काबुलीका खयाल धीरे-धीरे मनसे बिलकुल उतर गया। हमलोग जब घरमें बैठकर हमेशाके अभ्यासके अनुसार नित्यका काम धन्धा करते हुए आरामसे दिन बिता रहे थे, तब एक स्वाधीन पर्वतचारी पुरुष जेलकी दीवारोंके अन्दर कैसे सालपर साल बिता रहा होगा, यह बात हमारे मनमे कभी उदित ही नहीं हुई।

और, चंचल-हृदया मिनीका आचरण तो और-भी लज्जाजनक था, यह बात उसके बापको माननी ही पड़ेगी। उसने सहज ही अपने पुराने मित्रको भूलकर पहले तो नबी सईसके साथ मित्रता जोड़ी। फिर क्रमश जैसे-जैसे उसकी उमर बढने लगी, वैसे-वैसे सखाके बदले एकके बाद एक उसकी सखियाँ जुटने लगीं। और तो क्या, अब वह अपने बापूजीके लिखनेके कमरेमें भी नहीं दिखाई देती। मेरा तो एक तरहसे उसके साथ सम्बन्ध ही टूट गया है।

कितने ही साल बीत गये। सालों बाद आज फिर एक शरद्‌ऋतु आई है। मिनीकी सगाई पकी हो गई है। पूजाकी छुट्टियोंमे ही उसका ब्याह हो जायगा। कैलासवासिनीके साथ-साथ अबकी बार हमारे घरकी आनन्दमयी मिनी भी बाप-माके घरमें अँधेरा करके सास-ससुरके घर चली जायगी।

प्रभातका सूर्य बड़ी सुन्दरतासे उदय हुआ। वर्षाके बाद शरद्‌ऋतुकी यह नई-धुली-हुई धूप मानो सुहागेमें-गले निर्मल सोनेकी तरह रंग दे रही है। कलकत्ताकी गलियोंके भीतर परस्पर सटे-हुए पुराने ईंट-झर गन्दे मकानोंके ऊपर भी इस धूपकी आभाने एक तरहका अनुपम लावण्य फैला दिया है।

हमारे घरपर आज अँधेरेसे ही शहनाई बज रही है। मुझे ऐसा लग रहा है जैसे वह मेरे कलेजेकी पसलियोंमेंसे रो-रोकर बज रही हो। उसकी करुण-भैरवी रागिनी मानो मेरी आसन्न विच्छेद-व्यथाको शरद्‌ऋतुकी धूपके साथ सम्पूर्ण विश्व-जगत्‌में व्याप्त किये देती है। मेरी मिनीका आज व्याह है।

सवेरेसे बड़ा-भारी झमेला है। हर वक्त लोगोंका आना-जाना जारी है। आँगनमें बाँस बाँधकर मंडप छाया जा रहा है। हरएक कमरेमें और बरामदेमें झाड़ लटकाये जा रहे हैं और उसकी टन टन आवाज मेरे कमरेमें आ रही है। 'चल रे' 'जल्दी कर' 'इधर आने' की तो कोई शुमार ही नहीं।

मैं अपने लिखने-पढ़नेके कमरेमें बैठा हुआ हिसाब लिख रहा था। इतनेमें रहमत आया और सलाम करके खड़ा हो गया।

पहले तो मैं उसे पहचान ही न सका। उसके पास न तो झोली थी, न वैसे लम्बे-लम्बे बाल थे, और न चेहरेपर पहले जैसा तेज ही था। अन्तमें उसकी मुसकराहट देखकर पहचान सका कि वह रहमत है।

मैंने पूछा—"क्यों रहमत, कब आये ?"

उसने कहा—"कल शामको जेलसे छूटा हूं।"

सुनते ही उसके शब्द मेरे कानोंमे खटसे बज उठे। किसी खूनीको मैंने कभी आँखोंसे नहीं देखा, उसे देखकर मेरा सारा मन एकाएक सिकुड-सा गया। मेरी यही इच्छा होने लगी कि आजके इस शुभ दिनमे यह आदमी यहाँसे चला जाय तो अच्छा हो।

मैंने उससे कहा—"आज हमारे घरमें एक जरूरी काम है, सो आज मैं उसमे लगा हुआ हू। आज तुम जाओ, फिर आना।"

मेरी बात सुनकर वह उसी समय जानेको तैयार हो गया। पर दरवाजेके पास जाकर कुछ इधर-उधर करके बोला—"बच्चीको जरा देख लेता ?—"

शायद उसे यही विश्वास था कि मिनी अब तक वैसी ही बच्ची बनी है। उसने सोचा कि मिनी अब भी पहलेकी तरह 'काबुल-वाला' 'ओ काबुलवाला' चिल्लाती हुई दौड़ी चली आयेगी। उन दोनोंके उस पुराने कौतुक-जन्य हास्यालापमे किसी तरहकी रुकावट न होगी। यहाँ तक कि पहलेकी मित्रताकी याद करके वह एक पेटी अंगूर और एक कागजके दोनेमे थोड़ीसी किसमिस और बादाम, शायद अपने देशके किसी आदमीसे माँग-मूँगकर, लाया था। उसकी वह पहलेकी अपनी झोली उसके पास नहीं थी।

मैंने कहा—"आज घरमे बहुत काम है। आज किसीसे मुलाकात न हो सकेगी।"

मेरा जवाब सुनकर वह कुछ उदास-सा हो गया। खामोशीके साथ उसने एक बार मेरे मुँहकी ओर स्थिर दृष्टिसे देखा; फिर "सलाम बाबू साहब' कहकर दरवाजेके बाहर निकल गया।

मेरे हृदयमें न-जाने कैसी एक वेदना-सी उठी। मैं सोच ही रहा था कि उसे बुलाऊँ; इतनेमें देखा तो, वह खुद ही आ रहा है।

पास आकर बोला—"ये अंगूर और कुछ किसमिस-बादाम बच्चीके लिए लाया था, उसको दे दीजियेगा।"

मैंने उसके हाथसे सामान लेकर उसे पैसे देने चाहे, पर उसने मेरा हाथ थाम लिया, कहने लगा—"आपकी बहुत मेहरबानी है बाबू सा'ब, हमेशा याद रहेगी; पैसा रहने दीजिये।" जरा ठहरकर फिर बोला—"बाबू सा'ब, आपकी जैसी मेरी भी देसमें एक लड़की है। मैं उसकी याद करके आपकी बच्चीके लिए थोड़ी-सी मेवा हाथमें ले आया करता हूं। मैं तो यहाँ सौदा बेचने नहीं आता।"

कहते हुए उसने अपने ढीले-ढाले कुड़तेके अन्दर हाथ डालकर छातीके पाससे एक मैला-कुचैला कागजका टुकड़ा निकाला; और बड़े जतनसे उसकी तह खोलकर दोनों हाथोंसे उसे फैलाकर मेरी टेबिलपर रख दिया।

देखा कि कागजपर एक नन्हेसे हाथके छोटेसे पंजेकी छाप है। फोटोग्राफ नहीं, तैलचित्र नहीं, हाथमें थोडीसी कालिख लगाकर कागजके ऊपर उसीका निशान ले लिया गया है। अपनी लडकीकी इस याददाश्तको छातीसे लगाकर रहमत हर साल कलकत्ताकी गली-कूचियोंमें मेवा बेचने आता है; और तब यह कालिख-चित्र मानो उसकी बच्चीके हाथका सुकोमल स्पर्श उसके बिछुड़े हुए विशाल वक्षःस्थलमें सुधा उँड़ेलता रहता है।

देखकर मेरी आँखें भर आईं; और फिर इस बातको मैं

बिलकुल ही भूल गया कि वह एक काबुली मेवावाला है और मै एक उच्च वंशका रईस हूं। तब मै महसूस करने लगा कि जो वह है, वही मै हूं। वह भी बाप है, मै भी बाप हूं। उसकी पर्वतवासिनी छोटी-सी पार्वतीके हाथकी निशानीने मेरी ही मिन्नीकी याद दिला दी। मैंने उसी वक्त मिनीको बाहर बुलवाया। हालॉ कि इसपर भीतर बहुत-कुछ आपत्ति की गई, पर मैंने उसपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। ब्याहकी पूरी पोशाक और जेवर गहने पहने हुए बेचारी वधू-वेशिनी मिनी मारे शरमके सिकुड़ी हुई-सी मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

उसे देखकर रहमत काबुली पहले तो सकपका गया; पहले जैसी बातचीत करते उससे न बना। बादमें वह हॅसता हुआ बोला—"लल्ली, सासके घर जा रही है क्या ?"

मिनी अब सासके मानी समझने लगी है; लिहाजा अब उससे पहलेकी तरह जवाब देते न बना। रहमतकी बात सुनकर मारे शरमके उसका मुंह लाल-सुर्ख हो उठा। उसने मुंह फेर लिया। मुझे उस दिनकी बात याद आ गई जब कि काबुलीके साथ मिनीका प्रथम परिचय हुआ था। मनमे एक व्यथा-सी जाग उठी।

मिनीके चले जानेपर एक गहरी उसास भरकर रहमत जमीनपर बैठ गया। शायद उसकी समझमे यह बात एकाएक स्पष्ट उठी कि उसकी लडकी भी इतने दिनोंमें बडी हो गई होगी, और उसके साथ भी उसे अब फिरसे नई जान-पहचान करनी पड़ेगी, शायद उसे अब वह ठीक पहलेकी-सी वैसीकी वैसी न पायेगा। इन आठ बरसोंमें उसका क्या हुआ होगा, कौन जाने!

सवेरेके वक्त शरद्‌की स्निग्ध सूर्य-किरणोंमें शहनाई बजने लगी ; और रहमत कलकत्ताकी एक गलीके भीतर बैठा हुआ अफगानिस्तानके एक मरु-पर्वतका दृश्य देखने लगा।

मैंने पचास रुपयेका नोट निकालकर उसके हाथमें दिया ; और कहा—"रहमत, तुम आज देश चले जाओ, अपनी लड़कीके पास। तुम दोनोंके मिलन-सुखसे मेरी मिनी सुख पायेगी।"

रहमतको रुपये देनेके बाद व्याहके हिसाबमेंसे मुझे उत्सव-समारोहके दो-एक अंग छाँटकर निकाल देने पड़े। जैसी मनमें थी वैसी रोशनी नहीं करा सका, अंगरेजी बाजे भी नहीं आये, घरमें औरतें बड़ी नाराजी दिखाने लगीं, सब-कुछ हुआ ; फिर भी मेरा खयाल है कि आज एक अपूर्व मंगल-प्रकाशसे हमारा वह शुभउत्सव उज्ज्वल हो उठा।

छुट्टी

गाँवके सब लड़कोंके सरदार फटिकचन्द्र चक्रवर्तीके दिमागमें अचानक एक नया खेल सूझा। नदीके किनारे बड़ा-भारी एक साखूका लट्ठा मस्तूलके रूपमें रूपान्तरित होनेकी प्रतीक्षामें पड़ा था ; तय हुआ कि उसे सब मिलकर लुढ़काकर नदीमें बहा दें।

जिस आदमीका लट्ठा है, ठीक जरूरतके वक्त उसे कितना अचम्भा होगा, कितना गुस्सा आयेगा और कितनी परेशानी होगी, ातका मन-ही-मन अन्दाजा लगाकर लड़कोंने इस प्रस्तावका ारहसे अनुमोदन किया।

कमर बाँधकर सब-कोई जब बड़ी दिलचस्पीके साथ काममें जुटनेको तैयार हो गये तब फटिकका छोटा भाई माखनलाल बड़ी गम्भीरतासे उस लट्ठेपर जमकर बैठ गया। उसकी खेल-सम्बन्धी इस उदार उदासीनताको देखकर और-सब लड़के मुरझा-से गये।

एकने पास जाकर डरते-डरते उसे धक्का भी दिया, पर उससे वह रंचमात्र भी विचलित नहीं हुआ। आश्चर्य है, चारों तरफ इतना प्रलोभन होनेपर भी, वह अकालपक्व मानव-पुत्र ज्योंका त्यों चुपचाप बैठा हुआ दुनियाके सब तरहके खेल-कूदोंकी असारताके विषयमें गम्भीर विचार करता रहा; कोई भी उसे विचलित न कर सका।

अन्तमें फटिकने आकर बड़े रोबके साथ उछलकर उससे कहा—देख, "मार खायेगा! नहीं तो उठ अभी!"

इसपर उसने जरा और-भी हिल-डुलकर अपने आसनको खूब मजबूत बना लिया।

ऐसी दशामें सर्वसाधारणके सामने अपने राजकीय-सम्मानकी रक्षाके लिए फटिकका कर्तव्य था कि वह कहना न-माननेवाले छोटे भाईकी कनपटीपर फौरन ही कसके एक तमाचा जड़ देता, लेकिन हिम्मत न पड़ी। फिर उसने ऐसा भाव धारण किया कि मानो वह चाहे तो अभी उसे अच्छी तरह दुरुस्त कर सकता है, पर करता नहीं; क्योंकि पहलेसे अबकी उसके दिमागमें और-भी एक अच्छा खेल सूझ गया, और उसमें इससे भी ज्यादा मजा आयेगा! उसने प्रस्ताव किया कि माखन-समेत उस लट्ठेको लुढ़का दिया जाय।

माखनने सोचा कि इसमें उसीका गौरव है; परन्तु यह बात

उसके या और-किसीके भी दिमागमें नहीं आई कि इसमें और-और पार्थिव गौरवोंकी तरह आनुसंगिक विपत्तिकी भी संभावना है।

लड़कोंने कमर बाँधकर लट्ठा लुढ़काना शुरू किया—'मारो ठेला हेइओ, और-भी थोड़ा हेइओ, शाबास जुआन हेइओ!' लट्ठा एक चक्कर घूम भी न पाया कि इतनेमें माखन अपने गाम्भीर्य गौरव और तत्त्वज्ञान समेत चारों खाने चित्त जमीनपर जा गिरा।

खेलके प्रारम्भमें ही ऐसा आशातीत फल पाकर और-और लडके बड़े खुश हो उठे, मगर फटिक जरा-कुछ घबरा-सा गया। माखन उसी दम बड़ी फुरतीसे उठकर फटिकपर टूट पड़ा; और बिलकुल अन्धेकी तरह दोनों हाथोंसे मारने-नोंचने चिपट गया। उसने फटिककी नाकपर, गालपर, जहाँ पाया नोंच खाया; और फिर रोते-रोते घरकी तरफ चल दिया। बस, खेल खतम।

फटिक थोड़ी-सी कॉस उखाड़कर उसे हाथमे लिये हुए एक अध-डूबी नावकी नोंकपर जा बैठा; और चुपचाप बैठा-बैठा काँसकी जड़ चबाने लगा।

इतनेमें दूसरे गाँवकी एक नाव आकर घाटसे लगी। उसपरसे एक अधेड़ आदमी, जिसकी मूँछें काली और बाल सफेद थे उतरा। उसने लड़केसे पूछा—"चक्रवर्तियोंका घर किधर है, लल्ला?" लडकेने काँस चवाते हुए कहा—"वो रहा।" पर उसने किधर इशारा किया, कुछ समझमें नहीं आया।

उसने फिर पूछा—"कहाँ?" जवाब मिला—"नहीं जानता?" कहकर पहलेकी तरह फिर वह हाथकी घाससे रस ग्रहण करने

लगा। और पथिक बेचारा और-किसीकी मददसे अभीष्ट स्थानकी तलाश करने चल दिया।

कुछ देर बाद बाघा नौकरने आकर फटिकसे कहा—"फटिक भइया, माजी बुला रही है।"

फटिकने कहा—"नहीं जाता, जा।"

पर बाघा पूरा बाघा ही निकला; उसने जबानी जमाखर्च न करके तुरत उसे गोदमें लटकाया और चल दिया। फटिक मारे गुस्सेके हाथ-पैर पटकता रहा, पर व्यर्थ।

फटिकको देखते ही उसकी मा खूब गुस्सा हुई, और बोली—"फिर तैंने माखनको मारा!"

फटिकने कहा—"नहीं, मैंने नहीं मारा।"

"फिर झूठ बोला!"

"हरगिज नहीं मारा! माखनसे पूछो न!"

माखनसे पूछा गया तो उसने अपनी पहलेकी शिकायतका समर्थन करते हुए कहा—"हाँ, मारा है।"

अब फटिकसे न रहा गया, तेजीसे लपककर उसने माखनके गालपर कसकर एक तमाचा जड दिया. बोला—"फिर झूठ!"

माने माखनका पक्ष लेकर फटिकको जोरसे झकझोर डाला और ऊपरसे कसकर दो-तीन थप्पड जड़ दिये। फटिकने माको ढकेल दिया।

माने चिल्लाकर कहा—"ऐ, तू हमपर हाथ उठायेगा!"

इतनेमें वह आदमी भी आ पहुंचा, जिसने नावसे उतरकर फटिकसे चक्रवर्तियोंके मकानका पता पूछा था। घरमें घुसते ही उसने कहा—"क्या हो रहा तुमलोगोंमें!"

फटिककी माने आश्चर्य और आनन्दमें आकर कहा—"अरे, ये तो भइया आ गये! तुम कब आये भइया!" और भाईको प्रणाम किया।

बहुत दिन हुए, फटिककी माके भइया पछाँहकी तरफ नौकरीपर गये थे। इस बीचमें फटिककी माके दो लड़के हुए और वे बड़े भी हो गये। आखिरी लड़का होनेके कुछ दिन बाद ही उसके पतिका देहान्त हो गया; पर तबसे एक बार भी उसके भइया अपनी विधवा बहनसे मिलने नहीं आये। आज बहुत दिन बाद छुट्टी पाकर विश्वम्भर बाबू अपनी बहनसे मिलने आये हैं।

कुछ दिन खूब हँसी-खुशीमें कटे। अन्तमें विदा होनेके दो-एक दिन पहले विश्वम्भर बाबूने बहनसे लड़कोंकी पढ़ाई-लिखाई और दिमागी तरक्कीके बारेमें पूछताछ की, तो मालूम हुआ कि फटिक बड़ा ढीठ, बड़ा उजड्ड हो गया है; पढ़नेमें उसका जरा भी मन नहीं लगता; और माखन शान्त है, सुशील है, पढ़ने-लिखनेमें भी वह तेज है। बहनने कहा—"फटिकके मारे मेरी तो नाकमें दम आ गया है।"

सुनकर विश्वम्भरने कहा कि फटिकको वे कलकत्ता ले जाकर वहीं अपने पास रखकर पढ़ायेंगे। विधवा इस प्रस्तावपर सहज ही राजी हो गई। और फटिकसे पूछने लगी—"क्यों रे फटिक, मामाके साथ कलकत्ता जायगा?"

फटिकने उछलकर जवाब दिया—"हाँ, जाऊँगा।"

यद्यपि फटिकको भेजनेमें उसकी माको कोई आपत्ति न थी, क्योंकि उनको हमेशा यह आशंका बनी रहती थी कि

एक बेहूदा हिमाकत-सी मालूम होती है। उसके बचपनका लालित्य और कंठकी मधुरता जो चली जाती है, उसके लिए लोग उसीको मन-ही-मन अपराधी समझते हैं। बचपन और जवानीके बहुतसे दोष माफ किये जा सकते हैं, पर इस समयकी कोई स्वाभाविक अनिवार्य त्रुटि भी असह्य मालूम होती है।

और, वह भी सर्वदा मन-ही-मन इस बातको महसूस करता रहता है कि दुनियामें कहीं भी वह ठीक-ठीक जँचता नहीं, इसीलिए अपने अस्तित्वपर वह हमेशा लज्जित और क्षमाप्रार्थी-सा बना रहता है। परन्तु मुश्किल यह है कि ठीक इसी उमरमें ऐसे लड़कोंके मनमें स्नेहके लिए सीमासे कुछ ज्यादा व्याकुलता पैदा हो जाती है। इस समय अगर वह किसी सहृदय व्यक्तिसे स्नेह प्यार या मित्रता-सी कोई चीज पा जाय, तो उसका वह खरीदा-हुआ गुलाम-सा बन जाय। लेकिन अफ़सोस कि उससे स्नेह करनेमे किसीकी हिम्मत ही नहीं पड़ती, क्योंकि फिर उसे सब-कोई 'सिर चढ़ना' समझने लगते है। यही वजह है कि इस उमरमें ऐसे बच्चोंका चेहरा और मनका भाव लगभग बिना मालिकके राहके कुत्ते जैसा हो जाता है।

इसलिए, ऐसी दशामें माके घरके सिवा दूसरी कोई जगह ऐसे बच्चोंके लिए नरकसे कम दुःखदायक नहीं। चारों तरफकी स्नेह-शून्य विरागता कदम-कदमपर उसके काँटेकी तरह चुभती रहती है। इस उमरमें साधारणतः नारी-जाति किसी एक श्रेष्ठ स्वर्गलोककी दुर्लभ वस्तु-सी मालूम पड़ती है; और इसीलिए

किसी नारीकी तरफसे अनादर होना उनके लिए बहुत ही वेदनादायक होता है।

फटिक अपनी मामीकी स्नेह-हीन आँखोंमें अशुभ ग्रहकी तरह खटकने लगा, और यह बात उसे सबसे ज्यादा अखरने लगी। उसकी मामी अगर उससे कभी किसी कामके लिए कहती, तो वह मारे खुशीके फूला न समाता; और उस खुशीमे वह जरूरतसे ज्यादा काम कर डालता। लेकिन मामी ही जब उसके उत्साहका दमन करके कहने लगती कि 'बस, अब बहुत हो गया, बहुत हो गया, अब रहने दो! अब तुम जाकर अपने काममे मन लगाओ। जाओ जरा पढो-लिखो।' तो उसे अपनी मानसिक उन्नतिके प्रति मामीका इतना ज्यादा ध्यान देना अत्यन्त निष्ठुर अन्याय-सा मालूम होता।

घरके भीतर ऐसा अनादर, और बाहर ऐसी कोई जगह नसीब नहीं जहाँ जाकर जरा दो घडी मन बहला ले, या भर-पेट ऊधम मचा ले! घरकी चहारदीवारीके अंदर कैद रहते-रहते उसे अपने उस गाँवकी ही याद आने लगी जिससे अकुताकर वह बड़े शौकसे शहर चला आया था। वहाँका वह खुला-हुआ मैदान जहाँ दिन-भर पतंग उडा करती थी, नदीका वह किनारा जहाँ बाँसकी बाँसुरीकी तान छिड़ा करती थी, और जब मनमे आया तब पानीमें कूदकर तैरनेकी छूट-पट्टी थी, वे सब साथके खिलाड़ी लडके, वह ऊधम, वह आजादी और सबसे बढ़कर वह रात-दिन बकझक करनेवाली और ठोंकने-पीटनेवाली मा दिन-रात उसके बेबस मनको अपनी ओर खींचने लगी।

बेचारे उस लज्जित शंकित दुबले-पतले लम्बे असुन्दर बालकके अन्तःकरणमें बार-बार जानवरों-जैसा एक तरहका नासमझ प्रेम, सिर्फ पास जानेकी अन्ध इच्छा, सिर्फ एक बिन-देखी चीजके लिए अव्यक्त आकुलता, गोधूलिके समय मातृहीन बछड़ेकी तरहका केवल एक आन्तरिक 'मा-मा' क्रन्दन उमड़ने लगा।

स्कूल-भरमें उससे बढ़कर मूर्ख और पढ़नेसे जी-चुरानेवाला दूसरा कोई लड़का ही न था। कोई बात पूछनेपर वह ऊपर मुँह बाये खड़ा रहता। मास्टर साहब जब मारना शुरू करते, तो बोझसे लदे गधेकी तरह वह चुपचाप सब सह लेता। लड़कोंकी जब खेलनेकी छुट्टी होती तब वह जंगलेके पास खड़ा-खड़ा दूरके मकानोंकी छत देखा करता। जब उस दोपहरकी घाममें किसी छतपर एक-दो लड़की-लड़के खेलके बहाने क्षण-भरके लिए दिखाई देते, तब उसका चित्त अधीर हो उठता।

एक दिन उसने मन-ही-मन दृढ निश्चय करके और खूब हिम्मत बाँधकर अपने मामासे पूछा था—"मामा, माके पास कब जाऊँगा ?" मामाने कहा था—"स्कूलकी छुट्टी होने दो।"

कुआरमें दशहरेकी छुट्टी होगी ! उसे तो अभी बहुत दिन हैं।

एक दिनकी बात है कि फटिकसे स्कूलकी किताबें खो गईं। एक तो वैसे ही पाठ याद नहीं होता, उसपर खो गईं किताबें; बेचारा बिलकुल लाचार हो गया। मास्टरने उसे रोजमर्रा मारना-पीटना और बेइज्जत करना शुरू कर दिया। स्कूलमें उसकी ऐसी दशा हो गई कि उसके ममेरे भाई भी उसके साथ सम्बन्ध स्वीकार करनेमें शर्मिन्दा होने लगे। फटिकको अपमानित होते देखते

तो वे और-और लड़कोंसे कहीं ज्यादा खुशी जाहिर करते।

जब बहुत ही असह्य हो उठा तब फटिक अपनी मामीके पास जाकर बड़े-भारी अपराधीकी तरह खड़ा होकर बोला—"किताबे खो गई है।"

मामीने अपने ओठोंके दोनों किनारोंपर क्रोधकी रेखा अंकित करते हुए कहा—"अच्छा किया! मै तुम्हारे लिए महीनेमे पॉच-पॉच बार किताबे नहीं खरीदवा सकती।"

फटिक चुपचाप लौट आया। वह पराया पैसा बरबाद कर रहा है इस बातका खयाल करके उसे अपनी मापर बड़ा-भारी गुमान हुआ और क्रोध भी आया। अपनी हीनता और दीनताकी शरमसे वह गड-गड़ गया।

स्कूलसे लौटनेपर उसी रातको फटिकके सिरमे दर्द शुरू हुआ और भीतरसे उसका जी घबराने लगा। समझ गया कि उसे बुखार चढ़ रहा है। साथ ही यह भी महसूस करने लगा कि अगर वह बीमार पड गया, तो मामीके लिए वह फजूलकी एक आफत और बन जायगा। उसकी यह बीमारी उनके लिए कैसा जी-जलावा स्वरूप धारण करेगी, फटिक इस बातको भी अच्छी तरह समझ रहा था। बीमारीकी हालतमे उस जैसा अकर्मण्य बुद्धिहीन भोंदू लड़का संसारमे अपनी माके सिवा और भी किसीके द्वारा सेवा पा सकता है ऐसी उम्मीद करनेमे उसे शरम मालूम होने लगी।

दूसरे दिन सवेरे फटिक लापता हो गया। चारों तरफ पडोसियोंके घर छान डाले, पर कहीं भी उसका पता न लगा।

उस दिन, रात ही से सावन-भादोंकी-सी मूसलधार वर्षा हो रही थी, इसलिए उसके ढूँढ़नेमें लोगोंको फजूलमें बहुत भीगना और हैरान होना पड़ा। अन्तमे जब कहीं भी पता न लगा तब विश्वम्भरनाथने थानेमें खबर दी।

सारा दिन इसी तरह बीत गया। शामके बाद एक गाड़ी विश्वम्भर बाबूके दरवाजेसे आकर लगी। उस समय भी वर्षा ज्यों-की-त्यों जारी थी, सड़कपर घुटनों पानी जम रहा था।

दो सिपाहियोंने मिलकर फटिकको गाड़ीसे उतारा और विश्वम्भर बाबूके पास पहुंचाया। देखा कि सिरसे लेकर पैर तक वह पानीसे भींगा हुआ है, तमाम देहपर कीच थुपी हुई है, मुँह और आँखें लाल हो रही है, जाड़ेसे थरथर काँप रहा है। विश्वम्भर बाबू उसे दोनों हाथोंपर उठाकर भीतर ले गये।

मामी उसे देखते ही बोल उठी—"क्यों फजूलमे पराये लड़केको लेकर जान आफतमें डाल रहे हो! भेज क्यों नहीं देते इसे गाँवको।"

वास्तवमे बात यह थी कि तमाम दिन मारे फिकरके उन्होंने कुछ खाया-पीया भी न था, और अपने लडकोंपर भी नाहकमे गुस्सा होकर चिल्ल-पुकार कर रहे थे।

फटिकने रोते हुए कहा—"मैं तो जा रहा था माके पास, मुझे ये लोग झूठमूठके पकड़ लाये हैं।"

बडे जोरका बुखार चढा। सारी रात वह वायमे ऊटपटांग बकता रहा। विश्वम्भर बाबू डाक्टर ले आये।

फटिकने एक बार अपनी लाल-लाल आँखें खोलकर ऊपर

छतकी ओर हतबुद्धिकी तरह देखते हुए कहा—"मामा, मेरी छुट्टी हो गई क्या ?"

विश्वम्भर बाबू रूमालसे आँसू पोंछते हुए, बुखारसे जलते-हुए बच्चेके कमजोर हाथको बड़े स्नेहसे अपनी गोदमें रखकर उसके पास बैठे रहे।

फटिक फिर बड़बड़ाने लगा—"मा, मुझे मारो मत, मा ! मैंने कुछ नहीं किया मा !"

दूसरे दिन, जरा दिन चढ़नेपर कुछ देरके लिए फटिकको होश आया, और न-जाने किसको देखनेकी आशासे वह घरके चारों तरफ आँखें फाड-फाडकर देखने लगा। और अन्तमें थककर, हताश होकर वह चुपचाप दीवारकी तरफ मुंह करके करवट लेकर सो गया।

विश्वम्भर बाबूने शायद उसके मनकी बात ताड़ ली, उसके कानके पास मुंह ले जाकर उन्होंने धीरेसे कोमल स्वरमें कहा—"फटिक बेटा, तेरी माको बुलवाया है, अब आती ही होगी, अच्छा बेटा !"

उसके बाद, दूसरा दिन भी गुजर गया। डाक्टरने चिन्तित और उदास चेहरा बनाकर कहा—"हालत तो बहुत खराब है।"

विश्वम्भर बाबू टिमटिमाती हुई बत्तीके उजालेमें रोगशय्याके पास बैठे हुए फटिककी माके लिए प्रतिक्षण प्रतीक्षा करने लगे।

फटिक जहाज़के खलासियोंकी तरह, उन्हींकी रागमें, कहने लगा—"एक बॉव मिला नहीं, दो बॉव मि-ला-आ-आ नहीं।" कलकत्ता आते समय कुछ दूर तक वह स्टीमरमें आया था, स्टीमरके

खलासी लोग पानीमें लोहा-शुदा रस्सी डालकर गानेके स्वरमें पानी मापते थे, बायमें पड़ा-पड़ा फटिक उन्हीं लोगोंके अनुकरणपर करुणस्वरसे पानी मापने लगा ; और जिस अपार समुद्रमें उसकी जीवन-नैया गोता खा रही थी उसमें रस्सी डालकर बेचारेको कहीं भी उसकी थाह नहीं मिल रही थी।

इसी समय आँधीकी तरह फटिककी मा घरके अन्दर आ पहुंची, और ऊँचे स्वरमे रो-रोकर शोक करने लगी। विश्वम्भरने बड़ी मुश्किलसे बहनके शोकोछ्वासको रोका, बेचारी अपने प्यारे लालकी खाटपर पछाड़ खाकर गिर पड़ी ; और रो-रोकर पुकारने लगी—"बेटा रे, अरे मेरा फटिक रे, मेरा सुआ रे !"

फटिकने मानो बड़ी आसानीसे इस पुकारका जवाब देते हुए कहा—"एं !"

माने फिर पुकारा—"मेरा बेटा रे, फटिक रे ! अरे मैं आ गई रे !"

फटिकने धीरे-धीरे करवट लेकर किसीकी ओर लक्ष्य न करके बहुत ही धीमे और विकृत स्वरमें कहा—"मा, अब मेरी छुट्टी हो गई मा, अब मैं घर जाता हूं मा !"

नीलू

शाम होनेको आई तो आँधीने खूब जोड़ पकड़ा। हवाके झोंके, वर्षाकी बौछार, बिजलीकी कड़क और चमकसे आसमानमे सुर और असुरकी लड़ाई-सी छिड़ गई। काले-काले बादलोंने महाप्रलयकी जयपताकाकी तरह इधर-उधर उड़ना शुरू कर दिया, गंगाके इस पार और उस पार विद्रोही लहरोंने हवाके तालके साथ नाचना शुरू कर दिया, और बगीचेके बड़े-बड़े पेड़ोंने अपनी सब-की-सब डालियोंको दायें-बायें आगे-पीछे हिला-हिलाकर एक तरहकी हायतोबा-सी मचा दी।

चन्द्ननगरका बगीचा है, और उसके बीचमें खड़ा है एक मकान। चारों तरफके दरवाजे-जंगले बन्द हैं; और भीतर बत्तियाँ जल रही हैं। सामनेके एक बन्द कमरेमे पलंगके सामने जमीनपर बिछे हुए बिस्तरपर बैठे हुए स्त्री-पुरुष आपसमें बातचीत कर रहे हैं।

शरत बाबू कह रहे थे—"और कुछ दिन रह जाओ तो तबीयत बिलकुल ठीक हो जाय। तभी देश जाना ठीक होगा।"

किरणमयी कह रही थी—"मेरी तबीयत तो बिलकुल ठीक हो गई है; अब देश चलनेमें कोई हर्ज नहीं।"

विवाहित पाठक-पाठिकाओंको समझानेकी जरूरत नहीं कि जितने संक्षेपमे रिपोर्ट पेश की गई है, ठीक उतने संक्षेपमे उनकी बातचीत खतम नहीं हुई होगी। विषय बहुत ज्यादा कठिन हो

सो बात भी नहीं, मगर फिर भी वाद-प्रतिवाद ऐसा चल रहा था कि बात किसी भी तरह नतीजेकी तरफ नहीं बढ़ रही थी; बिना कर्णधारकी नावकी तरह बराबर एक ही जगह चक्कर खा रही थी; और अन्तमें अश्रु-तरंगोंमें डूबनेकी नौबत आ पहुंची।

शरतने कहा—"डाक्टर कह रहा है, और कुछ दिन रह जानेसे अच्छा ही है।"

किरणने कहा—"तुम्हारा डाक्टर तो सब जानता है!"

शरतने कहा—"जानती तो हो, इन दिनों देशमें तरह-तरहकी बीमारियोंका दौरदौरा रहता है, इसलिए मेरी समझसे और भी दो महीने बाद जाना ठीक होगा।"

किरणने कहा—"तो यहाँ अभी शायद कहीं किसीको कोई बीमारी नहीं होती होगी!"

पहलेका इतिहास बस इतना ही है। किरणको उसके घरके और पाड़-पड़ोसके सभी चाहते हैं; और तो क्या, सास तक। वही किरण जब बीमार पड़ गई, तो सबको बड़ी चिन्ता हो गई; और डाक्टरने जब आब-हवा बदलनेके लिए बाहर कहीं जानेके लिए कहा, तो घर-द्वार और काम-काज छोड़के परदेश जानेमें पति और सास किसीको भी कोई आपत्ति नहीं हुई। यद्यपि गाँवके विवेकी प्रवीण व्यक्तियोंने, आब-हवा बदलनेसे फायदा होनेकी उम्मीद करनेको और एक स्त्रीके लिए इस तरह जमीन-आसमान एक करनेको नई-रोशनीवालोंकी महज एक बेशरमीके सिवा और कुछ नहीं समझा; और साथ ही एकसाथ कई प्रश्न भी कर डाले कि 'इसके पहले क्या और किसीकी स्त्रीको

कड़ी बीमारी नहीं हुई', 'शरतने जहाँ जाना तय किया है वहाँके आदमी क्या अमर हैं', और 'दुनियामे ऐसा भी कोई देश है क्या जहाँ भाग्यका लेख मिट गया हो', फिर भी शरत और उसकी माने उन सब बातोंकी जरा भी परवाह नहीं की। तब सारे गाँवके सम्पूर्ण ज्ञानकी अपेक्षा उन्हे अपनी हृदयलक्ष्मी किरणके प्राणोंकी कीमत ज्यादा मालूम हुई। अपने प्रिय व्यक्तिपर आई-हुई विपत्तिमे आदमी ऐसे ही मोहमें पड जाता है।

शरत चन्दननगरके बगीचेमे आकर रह रहा है, और किरण भी बीमारीसे छुटकारा पा चुकी है; सिर्फ शारीरिक कमजोरी है, पहले जैसी ताकत अभी नहीं आई। उसकी आँखों और चेहरेपर ऐसी एक तरहकी करुणापूर्ण कृशता अंकित हो गई है कि देखते ही हृदय काँपकर बोल उठता है, 'अरे-रे, बेचारी मरते-मरते बची है!'

मगर, किरणका स्वभाव है मिलनसार, वह संग-साथ चाहती है, आमोद-प्रमोद चाहती है। यहाँ अकेले अब उसे अच्छा नहीं लगता। उसके लिए न तो घरका काम-धन्धा है, न पाड़-पडोसकी साथिन है, दिन-भर सिर्फ एक अपने दुबले-पतले शरीरको हिलाने डुलानेमे उसका मन नहीं लगता। घंटे-घंटेमें दाग देखकर शीशीकी दवा पीओ, कहीं सेक लगाओ तो कहीं कुछ, फिर पथ्य पालन करो, इन सब बातोंसे उसका जी ऊब गया है। आज शामसे आँधी-मेहमे वन्द कमरेके अन्दर पति-पत्नीमे उसी बातको लेकर बहस चल पडी थी।

किरण जब तक जवाब दे रही थी तब तक दोनों तरफसे

बालककी कृपासे पुण्य-संचयकी आशासे सासको भी खुशी हासिल हुई। और, नाटक-मंडलीके मैनेजर मंडल महाशय और यमराज एकसाथ दोनोंके हाथसे बचकर अचानक इस धनी परिवारके हाथ पड़नेसे नीलकान्त भी मारे खुशीके फूला न समाया।

किन्तु, बहुत जल्द ही शरत और उसकी माकी राय बदलने लगी। उन लोगोंने सोचा कि काफी हो चुका, अब इस लड़केको किसी तरह विदा कर दिया जाय तो आफत दूर हो।

नीलकान्तने दुबकाचोरीसे शरतके हुक्केकी नलीमें मुँह देकर धुआँ निकालना शुरू कर दिया। बारिशके दिन वह बेधड़क बाबूकी खास शौककी रेशमी छतरी तानकर नये यार-दोस्तकी टोहमें गाँव-भरमें चक्कर लगाया करता। कहींसे एक गाँवका गन्दा कुत्ता पकड लाया और उसे ऐसा सर चढ़ाया कि बगैर बुलाये वह शरतके सजे-हुए कमरेमें जाकर साफ-सुथरी जाजमपर अपने चारों पदपल्लवोंसे धूल-मिट्टीकी छाप लगाकर अपने शुभागमनका स्थायी चिह्न छोड़ जाने लगा। देखते-देखते कुछ दिन बाद देखा गया कि चारों तरफ नीलकान्तके भक्त शिशु-सम्प्रदायका काफी दौरदौरा हो गया है; और उस साल गाँवके बागोंमें कच्चे आमोंको पकानेका मौका ही नहीं मिला।

किरण इस लड़केको बहुत ही चाहने और लाड़-प्यार करने लगी। शरत और शरतकी माने उसे बहुत-कुछ कहा-सुना, पर वह बाज नहीं आई। पतिकी पुरानी कमीज मोजे और नई धोती चादर जूते पहनाकर उसे वह बाबू सजाकर बाहर भेजने लगी। और, बीच-बीचमें उसे पास बुलाकर स्नेह और कौतुककी

बातें कर-करके, अपनी हवस पूरी करने लगी। किरण पलंगपर बैठी हँसती हुई पान लगाया करती, नौकरानी उसके भीगे हुए बालोंको नाना प्रकारसे इधर-उधर करके सुखाती रहती और नीलकान्त नीचे खड़ा होकर हाथ हिला-हिलाकर नल-दमयन्तीका अभिनय दिखाया करता। इस तरह लम्बी दोपहरी बहुत जल्द बीत जाती। किरण शरतको अपने साथ एक आसनपर बिठाकर उसे भी दर्शकश्रेणीमें शामिल करनेकी कोशिश करती, पर शरत बहुत ही परेशान होता, और उसके सामने नीलकान्त भी संकुचित हो जाता। फिर उसके अभिनयमें कुछ जान ही न रह जाती। किसी-किसी दिन सास भी देवी-देवताओंके नाम सुननेकी आशासे आकृष्ट होकर चली आती, किन्तु जल्द ही उनकी भक्तिपर दोपहरीकी नींद ऐसा जोरका हमला करती कि उससे भागते ही बनता, और खुद उन्हें भी शय्याशायी होना पड़ता।

शरतके हाथकी कनैठी और थप्पड़-चाँटे खाना नीलकान्तकी तक़दीरमें अक़सर बदा ही रहता, लेकिन शुरूसे ही इससे भी बढ़कर कठोर शासनसे सुपरिचित होनेसे इस तरहका अपमान और पीड़न उसके लिए कोई खास महत्व नहीं रखता। उसकी दृढ़ धारणा थी कि संसारके जल और स्थलविभागकी तरह मानव जन्म भी आहार और प्रहारमें विभक्त है, और प्रहारका अंश ही ज्यादा है।

नीलकान्तकी उमर ठीक कितनी होगी यह बताना कठिन है। अगर चौदह-पन्द्रह सालकी हुई, तो कहना होगा कि उमरकी अपेक्षा जबान बहुत ज्यादा पक गई है, और सत्रह-अठारहकी

हुई, तो कहना चाहिए कि उमरके देखे कुछ नहीं। कहनेका मतलब यह कि या तो वह अकाल-पक्व है या अकाल-अपक्व।

असल बात यह है कि वह बहुत ही कम उमरमे नाटक-मंडलीमे घुसकर राधा, दमयन्ती, सीता और विद्याकी सखी बन चुका है। विधाताके वर और मंडलीकी आवश्यकताकी हद तक वह बढता गया, और फिर अचानक उसका बढ़ना रुक गया। उसे सब छोटे रूपमे ही देखते थे, और वह भी अपनेको छोटा ही समझता था; उमरके लायक इज्जत उसे कहीं भी किसीने नहीं दी। इन सब स्वाभाविक और अस्वाभाविक कारणोंकी वजहसे सत्रह-अठारहकी उमरके देखे वह कम-पका और चौदह-पन्द्रहकी उमरके लिहाजसे ज्यादा पका मालूम होता था। पर देखनेमे चौदह-सालका-सा ही लगता था। खासकर मूँछोंपर रेख न आनेसे यह भ्रम और भी दृढ हो जाता है। चाहे तो तम्बाकूका धुआँ लगते रहनेसे हो या उमरके लायक बोली बोलनेसे, उसके ओठोंके आसपास कुछ ज्यादा पका हुआ-सा नजर आता, लेकिन उसकी बडी-बडी कली आँखोंके तारोंमें एक तरहकी ऐसी सरलता और तरुणता थी जिससे सहज ही अनुमान किया जा सकता कि उसके भीतरका हिस्सा स्वभावतः कच्चा है, नाटक-मंडलीकी गरमी लगकर सिर्फ ऊपरका ही थोडा-बहुत रंग बदला है।

शरत बाबूके आश्रयमें चन्दननगरके बगीचेमे रहते-रहते नीलकान्तपर स्वभावका नियम बे-रोकटोक अपना काम करने लगा। अब तक वह जो अपनी उमरकी जोडकी जगह अस्वाभाविकरूपसे बहुत देर तक रुका हुआ था, यहाँ आकर न-जाने

कब वह उसे चुपचाप पार कर गया, कुछ पता ही नहीं। उसकी सत्रह-अठारहकी उमरने अब खूब अच्छी तरह अपना रंग दिखाना शुरू कर दिया।

उसका यह परिवर्तन बाहरसे तो किसीको नहीं दिखाई दिया, लेकिन उसका पहला लक्षण तब प्रकट हुआ जब किरण उसके प्रति बच्चों-जैसा बरताव करती और वह उससे मन-ही-मन लज्जित और व्यथित होता। एक दिन आमोद-प्रिय किरणने उससे स्त्रीके वेशमें सखीका अभिनय दिखानेके लिए कहा, तो वह बात अचानक उसे अत्यन्त पीडादायक मालूम हुई; और तारीफ यह कि इसका कोई ठीक कारण उसे ढूंढे नहीं मिला। आजकल उसे कभी नाटककी नकल दिखाने बुलाया जाता है तो वह फौरन लापता हो जाता है। अब उसका मन इस बातसे दुःखित हो उठता है कि वह नाटक-मंडलीके एक लड़केके सिवा और कुछ नहीं।

यहाँ तक कि अब उसने मुनीमजीसे थोड़ा-थोड़ा पढ़नेका संकल्प कर लिया है। लेकिन, बहूजीका स्नेहभाजन होनेकी वजहसे मुनीमजीको वह आँखों देखा नहीं सुहाता। और नीलकान्तकी मनकी यह दशा कि एकाग्रता नामकी किसी चीजका वहाँ अस्तित्व ही नहीं, अक्षरोंका ज्ञान ठहरे तो कहाँ ठहरे? गंगाके किनारे चम्पाके पेड़के नीचे, तनेसे पीठ लगाये, बहुत देर तक किताब खोले बैठा रहता। सामने पानीकी लहरें एकके बाद एक आतीं और बिला जातीं; नाव आती और चली जाती, पेडकी डालियोंपर तरह-तरहकी चिड़ियाँ इकट्ठी होकर नाना प्रकारकी बोलियाँ बोला करतीं; और नीलकान्त किताबके पन्नेपर एकटक

देखता हुआ न-जाने क्या-सोचता रहता सो वही जानता होगा, या नहीं भी जानता हो। हालाँ कि एक बातसे दूसरी बातपर पहुंचना उसके लिए असम्भव ही था, फिर भी, इतना आत्मगौरव वह जरूर महसूस करता कि वह किताब पढ़ रहा है। सामनेसे जब कोई नाव निकलती तो वह और भी ज्यादा आडम्बरके साथ किताब उठाकर ऐसे ओठ हिलाने लगता जैसे सचमुच ही पढ़ रहा हो, और जब नाव आगे बढ़ जाती तो फिर उसका पढ़नेका उत्साह बिलकुल ही मारा जाता।

पहले अपने सीखे-हुए गाने वह बिना किसी संकोचके मशीनकी तरह यथानियम गाया करता था, अब उन गानोंका सुर उसके मनमे एक तरहका अपूर्व चांचल्य पैदा कर देता है। आजकल खासकर 'नल-दमयन्ती' का एक गाना वह अकसर गाया करता है, जिसमे तुच्छ अनुप्रासोंकी तुकबन्दीके सिवा और कुछ नहीं; शब्द भी बहुत ही मामूली, और अर्थ भी पूरी तरह उसकी समझमे आता हो सो भी नहीं, किन्तु फिर भी वह उसे इतना तन्मय होकर गाया करता मानो गानेमे खुद उसीकी मर्मवेदना ध्वनित हो रही हो! राजहंस और राजकुमारीकी संगीतमय बातचीतसे उसके मनमे एक अपूर्व चित्रका आभास जाग उठता, अपनेको वह क्या समझता सो साफ-साफ नहीं कहा जा सकता, किन्तु इस बातको वह कतई भूल जाता कि वह बिना मा-बापका, नाटक-मंडलीका एक मामूली छोकड़ा है। अत्यन्त गरीबके घरका अभागा मैला-कुचैला बच्चा जैसे रातको गुदड़ीमे पड़ा-पड़ा अपनी माके मुंहसे नानीकी कहानी सुनते-सुनते सो जाता और सपनेमे

सात समुद्र पार जाकर सोनेकी राजकुमारी और सात-राजाका धन देखकर फूला नहीं समाता, ठीक उसी तरह नीलकान्त भी "ओ राजहंस, होकर नृशंस, क्यों करत ध्वंस" गाते-गाते पुलकित हो उठता। और इतनेमें, पड़ोसीकी शिकायतपर स्वयं शरत बाबू आकर जब अचानक उसके गालपर ताड़से एक चाँटा जमाते, और तब गीति-मरीचिका न-जाने कहाँ बिला जाती।

इस बीचमें शरतका छोटा भाई सतीश भी कलकत्तासे, कालेजकी छुट्टियोंमें, यहाँ आ पहुंचा। किरणको बहुत खुशी हुई। उसके हाथमें एक काम और आ गया। वह उठने-बैठनेमें, खाने-पीनेमें, हरवक्त अपने बराबरीके देवरसे हंसी-मज़ाक करने लगी। कभी हाथोंमें सिन्दूर लगाकर पीछेसे उसकी आँखें दबा देती, कभी कुड़तेकी पीठपर बन्दर लिखकर बाहर जाते वक्त पीछेसे खिलखिलाकर हंस देती, कभी बाहरसे दरवाजेकी साँकल चढ़ाकर चुपकेसे लापता हो जाती। सतीश भी कम नहीं; वह उसकी चाभिओंका गुच्छा चुराकर, उसके पानमें लालमिर्च डालकर, आँख बचाके पलंगके पायेके साथ साड़ीका पल्ला बाँधकर सबका बदला लिया करता। इस तरह देवर-भौजाई दोनों मिलकर दिन-भर ऐसा शोर-गुल और हंसी-मजाक मचाये रहते कि कब दिन बीत जाता, कुछ मालूम ही न पडता।

नीलकान्तको न-जाने क्या हो गया, उसकी सारी खुशी ही जाती रही। वह किस बहानेसे किससे लड़े-झगड़े, उसकी कुछ समझमें नहीं आता। उसका मन कडुआहटसे भर गया। वह अपने अनुयायी लड़कोंको अन्यायरूपसे रुलाने लगा, शौकसे

पाले-हुए अपने देशी कुत्तेको बेमतलब पीटने लगा। यहाँ तक कि राह-चलते राहगीरोंको छेडनेसे भी बाज नहीं आता।

जो अच्छा खा सकते हैं उन्हें सामने विठाकर खूब ज्यादा खिलानेमें किरणको बड़ा आनन्द आता है। ज्यादा खानेकी ताकत नीलकान्तमें थी; और स्वादिष्ट चीज बार-बार खानेको कहा जाता तो उसकी तरफसे आज्ञा-पालन करनेमें कोई त्रुटि भी नहीं रहती। इसलिए किरण अकसर उसे भीतर बुलाकर अपने सामने खिलाया करती; और इस ब्राह्मण बालकको तबीयत भरके खाते देख उसे हदसे ज्यादा खुशी भी होती। लेकिन इधर सतीशके आ जानेसे, कुछ दिनोंसे उसे नीलकान्तको सामने विठाकर खिलानेकी फुरसत नहीं मिली। पहले भी कभी कभी ऐसा हो जाया करता था, लेकिन उससे नीलकान्तके खाने-पीनेमें कोई खास फरक नहीं आया। वह सब कुछ खा पीकर आखिरमें दूध-भातका कटोरा तक धोकर पी जाता और तब उठता। मगर आजकल किरण खुद बुलाकर नहीं खिलाती तो भीतरसे उसका जी दुखने लगता, मुँहका स्वाद जाता रहता, और बगैर कुछ खाये पीये ही उठ जाता, और रुँधे हुए गलेसे दासीसे कह जाता, 'विलकुल भूख नहीं है।' समझता था, किरणको खबर लगते ही तुरंत वह उसे भीतर बुलायेगी और अनुतप्त चित्तसे उसे मनाकर खानेको कहेगी; और वह रूठकर मुँह फुलाये रहेगा, कहेगा, 'विलकुल भूख नहीं है।' लेकिन न तो कोई किरणको खबर ही देता और न किरण उसे बुलाकर खानेको ही कहती। नतीजा यह होता कि जो भी कुछ खाना बचता उसे नौकर-चाकर चट

कर जाते। और तब वह अपनी कोठरीमें जाकर बत्ती बुझाकर बिस्तरपर पड़ जाता और सिसक-सिसकर रोता रहता। किसको गरज पड़ी है जो अंधेरेमें उसके पास जाकर पूछे कि वह क्या चाहता है, क्यों पड़ा-पडा रो रहा है? कौन उसे सान्त्वना दे? जब कोई भी नहीं आता तो स्वयं स्नेहमयी विश्वधात्री निद्रा आकर धीरे-धीरे अपने कोमल कर-स्पर्शसे उस मातृहीन व्यथित बालकके अशान्त मनको शान्त करके सुला जाती।

नीलकान्तकी दृढ़ धारणा हो गई कि सतीशने ही उसके खिलाफ किरणसे चुगली खाई है। जिस दिन किरण किसी कारणसे गम्भीर बनी रहती उस दिन वह समझ लेता कि सतीशने जरूर आज चुगली खाई है, इसीसे किरण उसपर गुस्सा है, बोलती नही।

अबसे नीलकान्त भगवानसे बराबर यही मनाता रहता है कि दूसरे जनममे मै 'सतीश' हो जाऊं और सतीश 'नीलू' हो जाय। वह जानता है कि ब्राह्मणका एकान्तचित्तसे दिया हुआ श्राप कभी भी निष्फल नहीं हो सकता, इसलिए वह मन-ही-मन सतीशको भस्म करनेमें खुद ही भस्म होने लगा; और ऊपरकी मंजिलसे सतीश और उसकी भाभी किरणकी जोरकी हंसी सुनता रहा।

इतनी उसमे हिम्मत नहीं कि वह साफ तौरसे सतीशके साथ दुश्मनी निभाये, लेकिन मौका पाकर उसके खिलाफ छोटी-मोटी अड़चन खड़ी करके वह बहुत खुश होता। घाटकी सीड़ियोंपर साबुन रखकर सतीश जब गंगामें उतरकर डुबकियाँ लगाना शुरू करता, तब वह आकर चटसे साबुन उठाकर चम्पत हो

तो वे और-और लडकोंसे कहीं ज्यादा खुशी जाहिर करते।

जब बहुत ही असह्य हो उठा तब फटिक अपनी मामीके पास जाकर बड़े-भारी अपराधीकी तरह खड़ा होकर बोला—"किताबें खो गई हैं।"

मामीने अपने ओठोंके दोनों किनारोंपर क्रोधकी रेखा अंकित करते हुए कहा—"अच्छा किया! मै तुम्हारे लिए महीनेमें पाँच-पॉच बार किताबे नहीं खरीदवा सकती।"

फटिक चुपचाप लौट आया। वह पराया पैसा बरबाद कर रहा है इस बातका खयाल करके उसे अपनी मापर बड़ा-भारी गुमान हुआ और क्रोध भी आया। अपनी हीनता और दीनताकी शरमसे वह गड-गड गया।

स्कूलसे लौटनेपर उसी रातको फटिकके सिरमे दर्द शुरू हुआ और भीतरसे उसका जी घबराने लगा। समझ गया कि उसे बुखार चढ़ रहा है। साथ ही यह भी महसूस करने लगा कि अगर वह बीमार पड़ गया, तो मामीके लिए वह फजूलकी एक आफत और बन जायगा। उसकी यह बीमारी उनके लिए कैसा जी-जलावा स्वरूप धारण करेगी, फटिक इस बातको भी अच्छी तरह समझ रहा था। बीमारीकी हालतमे उस जैसा अकर्मण्य बुद्धिहीन भोंदू लड़का संसारमे अपनी माके सिवा और भी किसीके द्वारा सेवा पा सकता है ऐसी उम्मीद करनेमे उसे शरम मालूम होने लगी।

दूसरे दिन सवेरे फटिक लापता हो गया। चारों तरफ पड़ोसियोंके घर छान डाले, पर कहीं भी उसका पता न लगा।

उस दिन, रात ही से सावन-भादोंकी-सी मूसलधार वर्षा हो रही थी, इसलिए उसके ढूँढ़नेमें लोगोंको फजूलमें बहुत भीगना और हैरान होना पड़ा। अन्तमें जब कहीं भी पता न लगा तब विश्वम्भरनाथने थानेमें खबर दी।

सारा दिन इसी तरह बीत गया। शामके बाद एक गाड़ी विश्वम्भर बाबूके दरवाजेसे आकर लगी। उस समय भी वर्षा ज्यों-की-त्यों जारी थी, सड़कपर घुटनों पानी जम रहा था।

दो सिपाहियोंने मिलकर फटिकको गाड़ीसे उतारा और विश्वम्भर बाबूके पास पहुंचाया। देखा कि सिरसे लेकर पैर तक वह पानीसे भींगा हुआ है, तमाम देहपर कीच थुपी हुई है, मुँह और आँखें लाल हो रही हैं, जाड़ेसे थरथर काँप रहा है। विश्वम्भर बाबू उसे दोनों हाथोंपर उठाकर भीतर ले गये।

मामी उसे देखते ही बोल उठी—"क्यों फजूलमें पराये लडकेको लेकर जान आफतमें डाल रहे हो! भेज क्यों नहीं देते इसे गाँवको।"

वास्तवमें बात यह थी कि तमाम दिन मारे फिकरके उन्होंने कुछ खाया-पीया भी न था; और अपने लडकोंपर भी नाहकमें गुस्सा होकर चिल्ल-पुकार कर रहे थे।

फटिकने रोते हुए कहा—"मैं तो जा रहा था माके पास, मुझे ये लोग झूठमूठके पकड लाये है।"

बडे जोरका बुखार चढा। सारी रात वह वायमें ऊटपटांग बकता रहा। विश्वम्भर बाबू डाक्टर ले आये।

फटिकने एक बार अपनी लाल-लाल आँखें खोलकर ऊपर

छतकी ओर हतबुद्धिकी तरह देखते हुए कहा—"मामा, मेरी छुट्टी हो गई क्या ?"

विश्वम्भर बाबू रूमालसे आँसू पोंछते हुए, बुखारसे जलते हुए बच्चेके कमजोर हाथको बड़े स्नेहसे अपनी गोदमें रखकर उसके पास बैठे रहे।

फटिक फिर बड़बड़ाने लगा—"मा, मुझे मारो मत, मा ! मैंने कुछ नहीं किया मा !"

दूसरे दिन, जरा दिन चढ़नेपर कुछ देरके लिए फटिकको होश आया; और न-जाने किसको देखनेकी आशासे वह घरके चारों तरफ आँखें फाड-फाडकर देखने लगा। और अन्तमें थककर, हताश होकर वह चुपचाप दीवारकी तरफ मुंह करके करवट लेकर सो गया।

विश्वम्भर बाबूने शायद उसके मनकी बात ताड़ ली, उसके कानके पास मुंह ले जाकर उन्होंने धीरेसे कोमल स्वरमें कहा—"फटिक बेटा, तेरी माको बुलवाया है, अब आती ही होगी, अच्छा बेटा !"

उसके बाद, दूसरा दिन भी गुजर गया। डाक्टरने चिन्तित और उदास चेहरा बनाकर कहा—"हालत तो बहुत खराब है।"

विश्वम्भर बाबू टिमटिमाती हुई बत्तीके उजालेमें रोगशय्याके पास बैठे हुए फटिककी माके लिए प्रतिक्षण प्रतीक्षा करने लगे।

फटिक जहाजके खलासियोंकी तरह, उन्हींकी रागमें, कहने लगा—"एक बॉव मिला नहीं, दो बॉव मि-ला-आ-आ नहीं।" कलकत्ता आते समय कुछ दूर तक वह स्टीमरमें आया था, स्टीमरके

खलासी लोग पानीमें लोहा-शुदा रस्सी डालकर गानेके स्वरमें पानी मापते थे, बायमें पड़ा-पड़ा फटिक उन्हीं लोगोंके अनुकरणपर करुणस्वरसे पानी मापने लगा ; और जिस अपार समुद्रमें उसकी जीवन-नैया गोता खा रही थी उसमें रस्सी डालकर बेचारेको कहीं भी उसकी थाह नहीं मिल रही थी।

इसी समय आँधीकी तरह फटिककी मा घरके अन्दर आ पहुंची, और ऊँचे स्वरमे रो-रोकर शोक करने लगी। विश्वम्भरने बड़ी मुश्किलसे बहनके शोकोछ्वासको रोका, बेचारी अपने प्यारे लालकी खाटपर पछाड़ खाकर गिर पड़ी ; और रो-रोकर पुकारने लगी—"बेटा रे, अरे मेरा फटिक रे, मेरा सुआ रे !"

फटिकने मानो बड़ी आसानीसे इस पुकारका जवाब देते हुए कहा—"एं !"

माने फिर पुकारा—"मेरा बेटा रे, फटिक रे ! अरे मैं आ गई रे !"

फटिकने धीरे-धीरे करवट लेकर किसीकी ओर लक्ष्य न करके बहुत ही धीमे और विकृत स्वरमें कहा—"मा, अब मेरी छुट्टी हो गई मा, अब मैं घर जाता हूं मा !"

नीलू

शाम होनेको आई तो आँधीने खूब जोड़ पकड़ा। हवाके झोंके, वर्षाकी बौछार, बिजलीकी कड़क और चमकसे आसमानमें सुर और असुरकी लड़ाई-सी छिड़ गई। काले-काले बादलोंने महाप्रलयकी जयपताकाकी तरह इधर-उधर उड़ना शुरू कर दिया, गंगाके इस पार और उस पार विद्रोही लहरोंने हवाके तालके साथ नाचना शुरू कर दिया, और बगीचेके बड़े-बड़े पेड़ोंने अपनी सब-की-सब डालियोंको दायें-बायें आगे-पीछे हिला-हिलाकर एक तरहकी हायतोबा-सी मचा दी।

चन्द्रननगरका बगीचा है; और उसके बीचमें खड़ा है एक मकान। चारों तरफके दरवाजे-जंगले बन्द हैं; और भीतर बत्तियाँ जल रही हैं। सामनेके एक बन्द कमरेमें पलंगके सामने जमीनपर बिछे हुए बिस्तरपर बैठे हुए स्त्री-पुरुष आपसमें बातचीत कर रहे हैं।

शरत बाबू कह रहे थे—"और कुछ दिन रह जाओ तो तबीयत बिलकुल ठीक हो जाय। तभी देश जाना ठीक होगा।"

किरणमयी कह रही थी—"मेरी तबीयत तो बिलकुल ठीक हो गई है, अब देश चलनेमें कोई हर्ज नहीं।"

विवाहित पाठक-पाठिकाओंको समझानेकी जरूरत नहीं कि जितने संक्षेपमें रिपोर्ट पेश की गई है, ठीक उतने संक्षेपमें उनकी बातचीत खतम नहीं हुई होगी। विषय बहुत ज्यादा कठिन हो

सो बात भी नहीं, मगर फिर भी वाद-प्रतिवाद ऐसा चल रहा था कि बात किसी भी तरह नतीजेकी तरफ नहीं बढ़ रही थी; बिना कर्णधारकी नावकी तरह बराबर एक ही जगह चक्कर खा रही थी; और अन्तमें अश्रु-तरंगोंमें डूबनेकी नौबत आ पहुंची।

शरतने कहा—"डाक्टर कह रहा है, और कुछ दिन रह जानेसे अच्छा ही है।"

किरणने कहा—"तुम्हारा डाक्टर तो सब जानता है!"

शरतने कहा—"जानती तो हो, इन दिनों देशमे तरह-तरहकी बीमारियोंका दौरदौरा रहता है, इसलिए मेरी-समझसे और भी दो महीने बाद जाना ठीक होगा।"

किरणने कहा—"तो यहाँ अभी शायद कहीं किसीको कोई बीमारी नहीं होती होगी!"

पहलेका इतिहास बस इतना ही है। किरणको उसके घरके और पाड़-पड़ोसके सभी चाहते हैं; और तो क्या, सास तक। वही किरण जब बीमार पड़ गई, तो सबको बड़ी चिन्ता हो गई, और डाक्टरने जब आब-हवा बदलनेके लिए बाहर कहीं जानेके लिए कहा, तो घर-द्वार और काम-काज छोड़के परदेश जानेमें पति और सास किसीको भी कोई आपत्ति नहीं हुई। यद्यपि गाँवके विवेकी प्रवीण व्यक्तियोंने, आब-हवा बदलनेसे फायदा होनेकी उम्मीद करनेको और एक स्त्रीके लिए इस तरह जमीन-आसमान एक करनेको नई-रोशनीवालोंकी महज एक बेशरमीके सिवा और कुछ नहीं समझा; और साथ ही एकसाथ कई प्रश्न भी कर डाले कि 'इसके पहले क्या और किसीकी स्त्रीको

कड़ी बीमारी नहीं हुई', 'शरतने जहाँ जाना तय किया है वहाँके आदमी क्या अमर हैं', और 'दुनियामे ऐसा भी कोई देश है क्या जहाँ भाग्यका लेख मिट गया हो'; फिर भी शरत और उसकी माने उन सब बातोंकी जरा भी परवाह नहीं की। तब सारे गाँवके सम्पूर्ण ज्ञानकी अपेक्षा उन्हे अपनी हृदयलक्ष्मी किरणके प्राणोंकी कीमत ज्यादा मालूम हुई। अपने प्रिय व्यक्तिपर आई-हुई विपत्तिमें आदमी ऐसे ही मोहमें पड़ जाता है।

शरत चन्दननगरके बगीचेमें आकर रह रहा है, और किरण भी बीमारीसे छुटकारा पा चुकी है; सिर्फ शारीरिक कमजोरी है, पहले जैसी ताकत अभी नहीं आई। उसकी आँखों और चेहरेपर ऐसी एक तरहकी करुणापूर्ण कृशता अंकित हो गई है कि देखते ही हृदय काँपकर बोल उठता है; 'अरे-रे, बेचारी मरते-मरते बची है!'

मगर, किरणका स्वभाव है मिलनसार, वह संग-साथ चाहती है, आमोद-प्रमोद चाहती है। यहाँ अकेले अब उसे अच्छा नहीं लगता। उसके लिए न तो घरका काम-धन्धा है, न पाड-पडोसकी साथिन हैं; दिन-भर सिर्फ एक अपने दुबले-पतले शरीरको हिलाने डुलानेमे उसका मन नहीं लगता। घंटे-घंटेमें दाग देखकर शीशीकी दवा पीओ, कहीं सेक लगाओ तो कहीं कुछ, फिर पथ्य पालन करो, इन सब बातोंसे उसका जी ऊब गया है। आज शामसे आँधी-मेहमे बन्द कमरेके अन्दर पति-पत्नीमें उसी बातको लेकर बहस चल पडी थी।

किरण जब तक जवाब दे रही थी तब तक दोनों तरफसे

बराबरीके तौरपर द्वन्द्वयुद्ध चल रहा था, लेकिन अन्तमें किरण जब चुप रहकर बिना प्रतिवादके शरतकी तरफसे जरा-सा मुँह फेरकर गरदन टेढ़ी करके रूठके बैठ गई, तब बेचारे कमजोर लाचार पुरुषके हाथमें और कोई अस्त्र ही न रहा। वह हार मंजूर करनेकी तैयारी कर ही रहा था कि इतनेमें बाहरसे नौकरने ऊँचे स्वरमें कुछ निवेदन किया।

शरतने दरवाजा खोला, और सुना, गंगामें कोई नाव डूब गई है, एक ब्राह्मणका लड़का तैरकर आया है अपने बगीचेमें।

सुनते ही किरणका मान-अभिमान दूर हो गया; उसी वक्त उठकर उसने अलगनीपरसे सूखी धोती उतार दी; और जल्दीसे दूध गरम करके ब्राह्मण-बालकको भीतर बुलवा लिया।

लड़का देखनेमें अच्छा ही था; लम्बे लम्बे बाल, बड़ी-बड़ी आँखें, मूँछोंकी जगह रेख अभी नहीं उठी। किरणने उसे अपने हाथसे खिलाया-पिलाया; और फिर उससे परिचय पूछा।

सुना, वह नाटक-मंडलीमें काम करता है, नाम है नीलकान्त। उसकी मंडली पास ही कहीं आई थी नाटक खेलने, किसी रईसके यहाँ। आते-आते नाव डूब गई। उसे पता नहीं कि कौन मरा और कौन बचा। वह अच्छा तैराक था, सो निकल आया।

लड़का यहीं रह गया। खासकर 'मरते-मरते बच गया' इस खयालसे किरणको उसपर बहुत दया आई; और उसे अपने पास ही रख लिया।

शरतने सोचा, यह अच्छा रहा, किरणको एक नया काम मिल गया; कुछ दिनोंके लिए तो 'चलो-चलो'से छुट्टी मिली। ब्राह्मण

बालककी कृपासे पुण्य-संचयकी आशासे सासको भी खुशी हासिल हुई। और, नाटक-मंडलीके मैनेजर मंडल महाशय और यमराज एकसाथ दोनोंके हाथसे बचकर अचानक इस धनी परिवारके हाथ पड़नेसे नीलकान्त भी मारे खुशीके फूला न समाया।

किन्तु, बहुत जल्द ही शरत और उसकी माकी राय बदलने लगी। उन लोगोंने सोचा कि काफी हो चुका, अब इस लड़केको किसी तरह विदा कर दिया जाय तो आफत दूर हो।

नीलकान्तने दुबकाचोरीसे शरतके हुक्केकी नलीमें मुँह देकर धुआँ निकालना शुरू कर दिया। बारिशके दिन वह बेधड़क बाबूकी खास शौककी रेशमी छतरी तानकर नये यार-दोस्तकी टोहमें गाँव-भरमें चक्कर लगाया करता। कहींसे एक गाँवका गन्दा कुत्ता पकड़ लाया और उसे ऐसा सर चढ़ाया कि बगैर बुलाये वह शरतके सजे-हुए कमरेमें जाकर साफ-सुथरी जाजमपर अपने चारों पदपल्लवोंसे धूल-मिट्टीकी छाप लगाकर अपने शुभागमनका स्थायी चिह्न छोड़ जाने लगा। देखते-देखते कुछ दिन बाद देखा गया कि चारों तरफ नीलकान्तके भक्त शिशु-सम्प्रदायका काफी दौरदौरा हो गया है; और उस साल गाँवके बागोंमें कच्चे आमोंको पकानेका मौका ही नहीं मिला।

किरण इस लड़केको बहुत ही चाहने और लाड़-प्यार करने लगी। शरत और शरतकी माने उसे बहुत-कुछ कहा-सुना, पर वह बाज नहीं आई। पतिकी पुरानी कमीज मोजे और नई धोती चादर जूते पहनाकर उसे वह बाबू सजाकर बाहर भेजने लगी। और, बीच-बीचमें उसे पास बुलाकर स्नेह और कौतुककी

बातें कर-करके अपनी हवस पूरी करने लगी। किरण पलंगपर बैठी हँसती हुई पान लगाया करती, नौकरानी उसके भीगे हुए बालोंको नाना प्रकारसे इधर-उधर करके सुखाती रहती और नीलकान्त नीचे खड़ा होकर हाथ हिला-हिलाकर नल-दमयन्तीका अभिनय दिखाया करता। इस तरह लम्बी दोपहरी बहुत जल्द बीत जाती। किरण शरतको अपने साथ एक आसनपर बिठाकर उसे भी दर्शकश्रेणीमें शामिल करनेकी कोशिश करती, पर शरत बहुत ही परेशान होता, और उसके सामने नीलकान्त भी संकुचित हो जाता। फिर उसके अभिनयमें कुछ जान ही न रह जाती। किसी-किसी दिन सास भी देवी-देवताओंके नाम सुननेकी आशासे आकृष्ट होकर चली आती, किन्तु जल्द ही उनकी भक्तिपर दोपहरीकी नींद ऐसा जोरका हमला करती कि उससे भागते ही बनता, और खुद उन्हे भी शय्याशायी होना पड़ता।

शरतके हाथकी कनैठी और थप्पड़-चाँटे खाना नीलकान्तकी तकदीरमें अकसर बदा ही रहता, लेकिन शुरूसे ही इससे भी बढ़कर कठोर शासनसे सुपरिचित होनेसे इस तरहका अपमान और पीड़न उसके लिए कोई खास महत्व नहीं रखता। उसकी दृढ़ धारणा थी कि संसारके जल और स्थलविभागकी तरह मानव जन्म भी आहार और प्रहारमें विभक्त हैं; और प्रहारका अंश ही ज्यादा है।

नीलकान्तकी उमर ठीक कितनी होगी यह बताना कठिन है। अगर चौदह-पन्द्रह सालकी हुई, तो कहना होगा कि उमरकी अपेक्षा जवान बहुत ज्यादा पक गई है; और सत्रह-अठारहकी

हुई, तो कहना चाहिए कि उमरके देखे कुछ नहीं। कहनेका मतलब यह कि या तो वह अकाल-पक्व है या अकाल-अपक्व।

असल बात यह है कि वह बहुत ही कम उमरमें नाटक-मंडलीमें घुसकर राधा, दमयन्ती, सीता और विद्याकी सखी बन चुका है। विधाताके वर और मंडलीकी आवश्यकताकी हद तक वह बढ़ता गया; और फिर अचानक उसका बढ़ना रुक गया। उसे सब छोटे रूपमें ही देखते थे, और वह भी अपनेको छोटा ही समझता था; उमरके लायक इज्जत उसे कहीं भी किसीने नहीं दी। इन सब स्वाभाविक और अस्वाभाविक कारणोंकी वजहसे सत्रह-अठारहकी उमरके देखे वह कम-पका और चौदह-पन्द्रहकी उमरके लिहाजसे ज्यादा पका मालूम होता था। पर देखनेमें चौदह-सालका-सा ही लगता था। खासकर मूँछोंपर रेख न आनेसे यह भ्रम और भी दृढ़ हो जाता है। चाहे तो तम्बाकूका धुआँ लगते रहनेसे हो या उमरके लायक बोली बोलनेसे, उसके ओठोंके आसपास कुछ ज्यादा पका हुआ-सा नजर आता; लेकिन उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखोंके तारोंमें एक तरहकी ऐसी सरलता और तरुणता थी जिससे सहज ही अनुमान किया जा सकता कि उसके भीतरका हिस्सा स्वभावतः कच्चा है, नाटक-मंडलीकी गरमी लगकर सिर्फ ऊपरका ही थोड़ा-बहुत रंग बदला है।

शरत बाबूके आश्रयमें चन्दननगरके बगीचेमें रहते-रहते नीलकान्तपर स्वभावका नियम बे-रोकटोक अपना काम करने लगा। अब तक वह जो अपनी उमरकी जोड़की जगह अस्वाभाविकरूपसे बहुत देर तक रुका हुआ था, यहाँ आकर न-जाने

कब वह उसे चुपचाप पार कर गया, कुछ पता ही नहीं। उसकी सत्रह-अठारहकी उमरने अब खूब अच्छी तरह अपना रंग दिखाना शुरू कर दिया।

उसका यह परिवर्तन बाहरसे तो किसीको नहीं दिखाई दिया, लेकिन उसका पहला लक्षण तब प्रकट हुआ जब किरण उसके प्रति बच्चों-जैसा बरताव करती और वह उससे मन-ही-मन लज्जित और व्यथित होता। एक दिन आमोद-प्रिय किरणने उससे स्त्रीके वेशमें सखीका अभिनय दिखानेके लिए कहा, तो वह बात अचानक उसे अत्यन्त पीड़ादायक मालूम हुई; और तारीफ यह कि इसका कोई ठीक कारण उसे ढूंढे नहीं मिला। आजकल उसे कभी नाटककी नकल दिखाने बुलाया जाता है तो वह फौरन लापता हो जाता है। अब उसका मन इस बातसे दुःखित हो उठता है कि वह नाटक-मंडलीके एक लड़केके सिवा और कुछ नहीं।

यहाँ तक कि अब उसने मुनीमजीसे थोड़ा-थोड़ा पढ़नेका संकल्प कर लिया है। लेकिन, वहूजीका स्नेहभाजन होनेकी वजहसे मुनीमजीको वह आँखों देखा नहीं सुहाता। और नीलकान्तकी मनकी यह दशा कि एकाग्रता नामकी किसी चीजका वहाँ अस्तित्व ही नहीं, अक्षरोंका ज्ञान ठहरे तो कहाँ ठहरे? गंगाके किनारे चम्पाके पेड़के नीचे, तनेसे पीठ लगाये, बहुत देर तक किताब खोले बैठा रहता। सामने पानीकी लहर एकके बाद एक आती और विला जातीं; नाव आती और चली जाती, पेड़की डालियोंपर तरह-तरहकी चिड़ियाँ इकट्ठी होकर नाना प्रकारकी बोलियाँ बोला करती; और नीलकान्त किताबके पन्नेपर एकटक

देखता हुआ न-जाने क्या सोचता रहता सो वही जानता होगा, या नहीं भी जानता हो। हालाँ कि एक बातसे दूसरी बातपर पहुंचना उसके लिए असम्भव ही था, फिर भी, इतना आत्मगौरव वह जरूर महसूस करता कि वह किताब पढ़ रहा है। सामनेसे जब कोई नाव निकलती तो वह और भी ज्यादा आडम्बरके साथ किताब उठाकर ऐसे ओठ हिलाने लगता जैसे सचमुच ही पढ़ रहा हो, और जब नाव आगे बढ़ जाती तो फिर उसका पढ़नेका उत्साह बिलकुल ही मारा जाता।

पहले अपने सीखे-हुए गाने वह बिना किसी संकोचके मशीनकी तरह यथानियम गाया करता था, अब उन गानोंका सुर उसके मनमे एक तरहका अपूर्व चांचल्य पैदा कर देता है। आजकल खासकर 'नल-दमयन्ती' का एक गाना वह अकसर गाया करता है, जिसमे तुच्छ अनुप्रासोंकी तुकबन्दीके सिवा और कुछ नहीं; शब्द भी बहुत ही मामूली, और अर्थ भी पूरी तरह उसकी समझमे आता हो सो भी नहीं; किन्तु फिर भी वह उसे इतना तन्मय होकर गाया करता मानो गानेमे खुद उसीकी मर्मवेदना ध्वनित हो रही हो। राजहंस और राजकुमारीकी संगीतमय बातचीतसे उसके मनमें एक अपूर्व चित्रका आभास जाग उठता, अपनेको वह क्या समझता सो साफ-साफ नहीं कहा जा सकता, किन्तु इस बातको वह कतई भूल जाता कि वह बिना मा-बापका नाटक-मंडलीका एक मामूली छोकड़ा है। अत्यन्त गरीबके घरका अभागा मैला-कुचैला बच्चा जैसे रातको गुदड़ीमे पड़ा-पड़ा अपनी माके मुंहसे नानीकी कहानी सुनते-सुनते सो जाता और सपनेमें

सात समुद्र पार जाकर सोनेकी राजकुमारी और सात राजाका धन देखकर फूला नहीं समाता, ठीक उसी तरह नीलकान्त भी "ओ राजहंस, होकर नृशंस, क्यों करत ध्वंस" गाते-गाते पुलकित हो उठता। और इतनेमें, पड़ोसीकी शिकायतपर स्वयं शरत बाबू आकर जब अचानक उसके गालपर तड़से एक चाँटा जमाते, और तब गीति-मरीचिका न-जाने कहाँ बिला जाती।

इस बीचमें शरतका छोटा भाई सतीश भी कलकत्तासे, कालेजकी छुट्टियोंमें, यहाँ आ पहुंचा। किरणको बहुत खुशी हुई। उसके हाथमें एक काम और आ गया। वह उठने-बैठनेमें, खाने-पीनेमें, हरवक्त अपने बराबरीके देवरसे हंसी-मजाक करने लगी। कभी हाथोंमें सिन्दूर लगाकर पीछेसे उसकी आँखें दबा देती, कभी कुड़तेकी पीठपर बन्दर लिखकर बाहर जाते वक्त पीछेसे खिलखिलाकर हंस देती, कभी बाहरसे दरवाजेकी साँकल चढ़ाकर चुपकेसे लापता हो जाती। सतीश भी कम नहीं; वह उसकी चाभिओंका गुच्छा चुराकर, उसके पानमें लालमिर्च डालकर, आँख बचाके पलंगके पायेके साथ साड़ीका पल्ला बाँधकर सबका बदला लिया करता। इस तरह देवर-भौजाई दोनों मिलकर दिन-भर ऐसा शोर-गुल और हंसी-मजाक मचाये रहते कि कब दिन बीत जाता, कुछ मालूम ही न पड़ता।

नीलकान्तको न-जाने क्या हो गया, उसकी सारी खुशी ही जाती रही। वह किस बहानेसे किससे लड़े-झगड़े, उसकी कुछ समझमें नहीं आता। उसका मन कडुआहटसे भर गया। वह अपने अनुयायी लड़कोंको अन्यायरूपसे रुलाने लगा, शौकसे

पाले-हुए अपने देशी कुत्तेको बेमतलब पीटने लगा। यहाँ तक कि राह-चलते राहगीरोंको छेडनेसे भी बाज नहीं आता।

जो अच्छा खा सकते है उन्हें सामने बिठाकर खूब ज्यादा खिलानेमें किरणको बडा आनन्द आता है। ज्यादा खानेकी ताकत नीलकान्तमें थी; और स्वादिष्ट चीज बार-बार खानेको कहा जाता तो उसकी तरफसे आज्ञा-पालन करनेमें कोई त्रुटि भी नहीं रहती। इसलिए किरण अकसर उसे भीतर बुलाकर अपने सामने खिलाया करती, और इस ब्राह्मण बालकको तबीयत भरके खाते देख उसे हदसे ज्यादा खुशी भी होती। लेकिन इधर सतीशके आ जानेसे, कुछ दिनोंसे उसे नीलकान्तको सामने बिठाकर खिलानेकी फुरसत नहीं मिली। पहले भी कभी कभी ऐसा हो जाया करता था, लेकिन उससे नीलकान्तके खाने-पीनेमे कोई खास फरक नहीं आया। वह सब कुछ खा पीकर आखिरमें दूध-भातका कटोरा तक धोकर पी जाता और तब उठता। मगर आजकल किरण खुद बुलाकर नहीं खिलाती तो भीतरसे उसका जी दुखने लगता, मुँहका स्वाद जाता रहता, और बगैर कुछ खाये पीये ही उठ जाता, और रुँधे हुए गलेसे दासीसे कह जाता, 'बिलकुल भूख नहीं है।' समझता था, किरणको खबर लगते ही तुरंत वह उसे भीतर बुलायेगी और अनुनय चित्तसे उसे मनाकर खानेको कहेगी; और वह रूठकर मुँह फुलाये रहेगा, कहेगा, 'बिलकुल भूख नहीं है।' लेकिन न तो कोई किरणको खबर ही देता और न किरण उसे बुलाकर खानेको ही कहती। नतीजा यह होता कि जो भी कुछ खाना बचता उसे नौकर-चाकर चट

कर जाते। और तब वह अपनी कोठरीमें जाकर बत्ती बुझाकर बिस्तरपर पड़ जाता और सिसक-सिसकर रोता रहता। किसको गरज पड़ी है जो अंधेरेमें उसके पास जाकर पूछे कि वह क्या चाहता है, क्यों पड़ा-पड़ा रो रहा है? कौन उसे सान्त्वना दे? जब कोई भी नहीं आता तो स्वयं स्नेहमयी विश्वधात्री निद्रा आकर धीरे-धीरे अपने कोमल कर-स्पर्शसे उस मातृहीन व्यथित बालकके अशान्त मनको शान्त करके सुला जाती।

नीलकान्तकी दृढ़ धारणा हो गई कि सतीशने ही उसके खिलाफ किरणसे चुगली खाई है। जिस दिन किरण किसी कारणसे गम्भीर बनी रहती उस दिन वह समझ लेता कि सतीशने जरूर आज चुगली खाई है, इसीसे किरण उसपर गुस्सा है, बोलती नहीं।

अबसे नीलकान्त भगवानसे बराबर यही मनाता रहता है कि दूसरे जनममें मैं 'सतीश' हो जाऊं और सतीश 'नीलू' हो जाय। वह जानता है कि ब्राह्मणका एकान्तचित्तसे दिया हुआ श्राप कभी भी निष्फल नहीं हो सकता, इसलिए वह मन-ही-मन सतीशको भस्म करनेमें खुद ही भस्म होने लगा; और ऊपरकी मंजिलसे सतीश और उसकी भाभी किरणकी जोरकी हंसी सुनता रहा।

इतनी उसमें हिम्मत नहीं कि वह साफ तौरसे सतीशके साथ दुश्मनी निभाये, लेकिन मौका पाकर उसके खिलाफ छोटी-मोटी अड़चन खड़ी करके वह बहुत खुश होता। घाटकी सीढ़ियोंपर साबुन रखकर सतीश जब गंगामें उतरकर डुबकियाँ लगाना शुरू करता, तब वह आकर चटसे साबुन उठाकर चम्पत हो

जाता। सतीश यथासमय साबुनकी तलाशमे आकर देखता तो साबुन नदारत ! एक दिन नहाते-नहाते अचानक उसने देखा कि उसका खास शौकका चिकनका कामदार कुड़ता गंगामे बहा चला जा रहा है। उसने समझा कि हवामे उड गया मालूम होता है; लेकिन हवा किधरसे आई यह नहीं जान सका।

एक दिनकी बात है कि सतीशको खुश करनेके लिए किरणने नीलूको बुलाकर उससे नाटकका गाना गानेके लिए कहा; पर नीलू चुपचाप खडा रहा, कुछ बोला नहीं। किरणने आश्चर्यके साथ पूछा—"तुझे क्या हो गया रे ?" नीलू फिर भी चुप रहा। किरणने फिर कहा—"राजहंसवाला गाना गा तो जरा।"

"भूल गया।"—कहकर नीलू चलता बना।

अन्तमे, एक दिन देश चलनेकी तैयारियॉ होने लगीं। सब-कोई तैयार होने लगे। सतीश भी साथ जायगा। मगर नीलकान्तसे किसीने कुछ कहा ही नहीं। वह साथ जायगा या यहीं रह जायगा यह सवाल ही नहीं उठा किसीके मनमे।

किरणने नीलूको साथ ले चलनेका प्रस्ताव किया। इसपर सास, पति और देवर सभीने विरोध करना शुरू कर दिया। और अन्तमें किरणने भी अपना इरादा छोड़ दिया। जानेके पहले किरणने नीलूको बुलाया और बड़े स्नेहके साथ उसने अपने घर लौट जानेको कहा।

लगातार बहुत दिनोंकी लापरवाहीके बाद सहसा आज मीठी बातें सुनकर उससे रहा नहीं गया, यकायक सिसक-सिसककर रो उठा। किरणकी भी ऑखें भर आईं। उसके मनमे बड़ा

भारी पछतावा होने लगा कि जिसे हमेशा पास नहीं रखा जा सकता उसे कुछ दिनोंके लिए लाड़-प्यार करके ममतामें फँसाकर उसने अच्छा नहीं किया।

सतीश पास ही खडा था; वह इतने बड़े लडकेका रोना देखकर बहुत ही नाराज हुआ; बोला—"अरे यह है कैसा बेहूदा लड़का! कोई बात नहीं चीत नहीं, ढॉयढॉय रोना शुरू कर दिया!"

किरणने इन कठोर शब्दोंके लिए सतीशको फटकारा। सतीशने कहा—"तुम समझती नहीं भाभी, हरएकको तुम बहुत ज्यादा विश्वास कर बैठती हो। कहाँका कौन है यह, कोई ठीक नहीं। यहाँ आकर राजा बनकर मौज कर रहा है। आज पुनर्मूषिक बननेकी नौबत आई, तो रो-रोकर रिझाना चाहता है! तुम्हारी कमजोरी जानता है न, आँसू देखते ही तुम गल जाओगी!"

नीलकान्त तुरत वहाँसे चल दिया। किन्तु उसका मन सतीशकी काल्पनिक मूर्तिको छुरीसे काटने लगा, आग होकर उसे जलाने लगा, सुई होकर उसमें चुभने लगा; मगर वास्तविक सतीशकी देहपर एक दाग भी न पडा, बल्कि खुद उसीके मर्मस्थलसे वेदनाकी आगका धुआँ-सा निकलने लगा।

सतीश कलकत्तासे एक शोकियानी कलमदान खरीद लाया था। उसके दोनों तरफ दो सीपकी नावोंके ऊपर दावातें जमी हुई थीं, बीचमें एक जर्मन-सिलवरका हंस पंख पसारे और चोंचमें कलम लिये बैठा था। उसपर सतीशकी कड़ी देख-रेख थी। अकसर वह उसे अपने रेशमी रूमालसे झाड़-पोंछा करता। किरण अकसर हँसीमें उस हंसकी चोंचपर उँगली मारकर कहा करती,

"ओरे राजहंस, होकर नृशंस, क्यों करत ध्वंस", और इसीपर देवर-भौजाईमें खूब हँसी-मजाक होने लगता।

देश रवाना होनेके एक दिन पहले अकस्मात् कलमदान लापता हो गया। किरणने हँसते हुए कहा—"लालाजी, तुम्हारा राजहंस तुम्हारी दमयन्तीकी खोजमें उड़ गया मालूम होता है!"

लेकिन सतीश आग-बबूला हो गया। उसे जरा भी सन्देह न रहा कि नीलकान्तने ही उसका कलमदान चुराया है, क्योंकि इसके गवाह भी मिल रहे हैं कि कल शामको वह सतीशके कमरेके आसपास चक्कर लगा रहा था।

अपराधीको सतीशके सामने पेश किया गया। वहाँ किरण भी मौजूद थी। सतीश छूटते ही बोल उठा—"तूने मेरा कलमदान चुराकर कहाँ रखा है, ले आ जल्दी!"

नीलकान्तने नाना अपराध और बिना-अपराधके शरतके हाथसे बहुत बार मार खाई है और प्रसन्नचित्तसे उसे सह लिया है। लेकिन किरणके सामने जब उसपर कलमदान चुरानेका दोष लगाया गया तो उसकी बड़ी-बड़ी दोनों आँखें लाल-सुर्ख हो उठीं और उनमेंसे आग-सी निकलने लगी, कलेजा ऊपरको आने लगा और छातीका सारा खून गले तक आकर अटक-सा गया। उसकी ऐसी हालत हो गई कि सतीशके मुंहसे एक भी शब्द और निकला तो वह उसपर भूखे शेरकी तरह टूट पड़ेगा।

किरणने उसे बगलवाले कमरेमें ले जाकर मीठे स्वरमें पूछा—"नीलू, अगर तैंने कलमदान लिया हो, तो चुपकेसे मेरे हाथमें दे जा, तुझे कोई कुछ नहीं कहेगा।"

नीलकान्तकी आँखोंसे टपटप आँसू गिरने लगे; अन्तमें वह हाथसे मुँह ढककर रोने लगा।

किरणने बाहर आकर कहा—"नीलूने हरगिज नहीं चुराया।"

शरत और सतीश दोनों कहने लगे—"जरूर चुराया है, उसके सिवा यहाँ और कौन चुरा सकता है!"

किरणने जोरके साथ कहा—"हरगिज नहीं।"

शरतने नीलकान्तको सामने बुलाकर उससे जिरह करनी चाही, किरणने कहा—"नहीं, उससे चोरीके बारेमे कोई भी बात नहीं पूछ सकते।"

सतीशने कहा—"उसकी कोठरी और बकसकी तलाशी लेनी चाहिए।"

किरणने कहा—"अगर ऐसा किया, तो मै तुमसे जिन्दगी-भरके लिए नहीं बोलूँगी। एक बेकसूर बच्चेपर किसी तरहका सन्देह तुम नहीं कर सकते।" कहते-कहते उसकी आँखें भर आईं, और उन आँसुओंकी दुहाई मानकर नीलकान्तके खिलाफ किसीने कोई कार्रवाई नहीं की।

निरीह आश्रित बालकपर इस तरहका अत्याचार होनेसे किरणका मन दयासे भर गया।

शामको वह एक बढ़िया धोती-जोड़ा, दो चादर, दो कुड़ते, जूतोंकी एक जोड़ी और एक दस रुपयेका नोट लेकर नीलूकी कोठरीमें जा पहुंची। उसकी इच्छा थी कि स्नेह-उपहारकी बतौर ये सब चीजें नीलूको बगैर जताये ही उसके बकसमे रख आयेगी। टीनका बकस भी उसीका दिया हुआ था।

आँचलमें बँधे-हुए अपने चाभीके गुच्छेमेंसे किसी एक चाभीसे उसने बकस खोल लिया। पर वह ऊपर तक भरा हुआ था, जिससे उपहारकी चीजें उसमे नहीं आ सकीं। बकसमें गुड्डीका सूता, लटाई, गेंद, किल्ली-डंडा, कुची अमिया काटनेके लिए लोहेकी पत्तीका बना हुआ चाकू, टूटे हुए काँचके गिलासका पेंदा आदि न-जाने क्या-क्या आग-धतूरा भरा हुआ था, कोई ठीक नहीं।

किरणने सोचा कि बकसको अच्छी तरह सजाकर लगाया जाय तो सब चीजें इसीमें आ जायेंगी। इस खयालसे सब चीजें वह बाहर निकालने लगी। पहले तो गुड्डी उडानेका सामान निकला, फिर और-और खेलकी चीजें निकलीं, उसके बाद धुले हुए कपड़े निकले, और सबसे नीचे निकला सतीशका वह कलमदान!

देखकर किरण दंग रह गई; और उसे हाथमे लेकर कुछ देर तक न-जाने क्या-क्या सोचती रही।

इतनेमें कब नीलकान्त पीछे आकर खड़ा हो गया, उसे मालूम भी नहीं पड़ा। नीलकान्तने सब-कुछ देखा; और सोचने लगा कि किरण खुद चोरकी तरह उसकी चोरी पकड़ने आई है। चोरी उसकी पकड़ी भी गई। वह परेशान था। उसकी कुछ समझमें ही नहीं आ रहा कि वह कैसे समझावे कि यह काम उसने सिर्फ लोभके वश चोरी करनेके लिए नहीं किया, सतीशसे बदला लेनेके लिए ही उसने ऐसा किया है? उसका पक्का इरादा था कि वह सबकी निगाह बचाकर चुपकेसे उसे गंगामें डाल आयेगा, मौका नहीं मिलनेसे ही जल्दीमे बकसमे रख दिया है। ये सब बातें कैसे कहे? कैसे समझावे कि वह चोर नहीं है, चोर नहीं है!

तो क्या है ? कैसे बतावे कि वह क्या है ? उसने चोरी की है, पर वह चोर हरगिज नहीं। किरणने जो चोर समझकर उसपर सन्देह किया है, वह कैसे समझावे कि यह उसका निष्ठुर अन्याय है ? और न समझा सका तो फिर कैसे वह इस मर्मवेदनाको जिन्दगी-भर ढोता फिरेगा ?

किरणने एक गहरी साँस ली; और कलमदान बकसके नीचे रख दिया। चोरकी तरह उसपर मैले कपड़े ढक दिये, उसपर बाकीका सामान रख दिया; और ऊपरसे अपने साथ लाई हुई उपहारकी चीजें और दस रुपयेका नोट रखकर बकस बन्द करके जहाँका तहाँ रख दिया।

लेकिन दूसरे दिन ब्राह्मण बालकका पता नहीं चला। गाँवके लोगोंने कहा कि उसे किसीने नहीं देखा। पुलिसवालोंने कहा, 'उसका पता नहीं लग रहा है।' तब शरतने कहा—"अब उसका बकस खोलकर देखना चाहिए।"

किरणने जिद पकड़ ली, कहा—"ऐसा हरगिज नहीं हो सकता।" और बकस उठाकर वह अपने कमरेमें ले आई।

चारों तरफसे अपना कमरा बन्द करके उसने कलमदान निकाला; और छिपाकर उसे वह गंगामें डाल आई।

शरत बाबू सपरिवार देश चले गये। बगीचा बिलकुल सूना हो गया; सिर्फ नीलूका वह पालतू कुत्ता खाना-पीना छोड़कर गंगाके किनारे-किनारे इधरसे उधर रोता-बिलखता हुआ घूमता रहा; न-जाने उसका क्या खो गया है जो इस तरह बेचैन होकर ढूंढ़ रहा है !

महामाया

महामाया और राजीवलोचन दोनों नदीके किनारे एक पुराने खंडहर मन्दिरमें जाकर मिले।

महामायाने मुँहसे कोई बात न कहकर अपनी स्वाभाविक गम्भीर दृष्टिसे, जरा-कुछ तिरस्कारके साथ, राजीवकी ओर देखा। उसका मतलब यह था कि 'तुम किस बिरतेपर आज बेवक्त मुझे यहाँ बुला लाये हो? मैं अब तक तुम्हारी सभी बातें मानती आई हूँ, इसीसे तुम्हारी इतनी हिम्मत बढ़ गई।'

राजीव वैसे ही महामायासे बराबर डरता रहता है, उसपर यह चितवन! बेचारा डर गया। सम्हलकर कुछ बात करना चाहता था, पर उसकी आशापर उसी क्षण पानी फिर गया। और अब, इस मिलनका जल्दीसे कोई-न-कोई कारण बिना बताये भी उसे छुटकारा नहीं मिलता दीखता। इससे वह जल्दीमें कह बैठा— "मैं चाहता हूँ कि यहाँसे कहीं भाग चलें, और वहाँ जाकर दोनों ब्याह कर लें।" राजीव जिस बातको कहना चाहता था बात तो उसने ठीक वही कही; लेकिन जो भूमिका वह सोचकर लाया था वह न-जाने कहाँ गुम हो गई। उसकी बात बिलकुल नीरस और निरलंकार हुई, यहाँ तक कि सुननेमें भी भद्दी और अजीब-सी लगी। वह खुद ही सुनकर भौचक्का-सा रह गया। और भी दो-चार बात जोड़कर उसे जरा नरम बना देनेकी ताकत उसमें न रही। खंडहर मन्दिरमें नदीके किनारे इस जलती हुई

दुपहरीमें महामायाको बुलाकर उस बेवकूफने सिर्फ इतना ही कहा—'चलो, हम दोनों चलकर व्याह कर लें !'

महामाया कुलीनोंके घरकी कुमारी लड़की है। उमर चालीस सालकी। जैसी पूरी उमर है वैसी ही सुन्दरता। शरत ऋतुकी धूपके समान पक्के सोनेके रंगकी प्रतिमा-सी लगती है, उस धूप जैसी ही दीप्त और नीरव ; और उसकी दृष्टि है दिव्यलोक-जैसी उन्मुक्त और निर्भीक।

उसके बाप नहीं हैं; सिर्फ बड़ा भाई है। उसका नाम है भवानीचरण। भाई-बहनकी प्रकृति लगभग एकसी ही है; मुंहसे बोलते कुछ नहीं, पर तेज ऐसा है कि दुपहरके सूरजकी तरह चुपकेसे जला सब देते है। खासकर भवानीचरणसे लोग बिना-कारण डरा करते है।

राजीव परदेसी है। यहाँकी रेशमकी कोठीका बड़ा-साहब उसे अपने साथ ले आया था। राजीवके बाप इसी साहबकी कोठीमें काम करते थे। उनकी मृत्यु होनेपर साहबने उनके नाबालिग लड़केके भरण-पोषणका भार आपने ऊपर ले लिया; और बचपनमें ही उसे अपनी इस बामनहाटीकी कोठीमें ले आया। लड़केके साथ सिर्फ उसकी एक स्नेहशीला बुआ थी। राजीव अपनी बुआके साथ भवानीचरणके पड़ोसमे रहा करता था। महामाया राजीवकी बाल्यसंगिनी थी; और रजीवकी बुआके साथ उसका सुदृढ़ स्नेह-बन्धन था।

राजीवकी उमर-क्रमशः सोलह, सत्रह, अठारह, यहाँ तक कि उन्नीस बरसकी हो गई; फिर भी, बुआके अनुरोध करनेपर

भी, वह व्याह करना नहीं चाहता। साहब उसकी इस सुबुद्धिका परिचय पाकर बहुत ही खुश हुआ। उसने सोचा कि लड़केने उन्हींको अपना आदर्श बना लिया है। साहबने शादी नहीं की थी। इस बीचमें बुआ भी मर गई।

इधर बूतेसे ज्यादा खर्च किये बिना महामायाके लिए अनुरूप और कुलीन पात्र मिलना मुश्किल हो रहा था; और उसकी कुमारी-अवस्था भी क्रमशः बढ़ती ही जा रही थी।

पाठकोंको यह बतानेकी जरूरत नहीं कि परिणय-बन्धनमें बाँधना जिन देवताका कार्य है वे यद्यपि इन दोनोंके प्रति अब तक बराबर लापरवाही ही दिखा रहे थे, किन्तु प्रणय-बन्धनका भार जिसपर है उसने अब तक अपना समय बिलकुल नष्ट नहीं किया। वृद्ध प्रजापति जिस समय झोंके ले रहे थे युवक कन्दर्प उस समय पूरा सावधान था।

कामदेवका प्रभाव भिन्न-भिन्न लोगोंपर भिन्न-भिन्न प्रकारसे पड़ता है। उनके प्रभावमें आकर राजीव अपने मनकी दो बात कहनेके लिए कोई मौका ढूंढ़ रहा था, पर महामाया उसे मौका ही नहीं देती थी। असलमें उसकी निस्तब्ध गम्भीर दृष्टि राजीवके व्याकुल हृदयमें एक तरहका डर पैदा कर देती थी।

आज, सैंकड़ों बार कसम खानेके बाद, राजीव उसे इस खंडहर मन्दिरमें ला सका। इसीसे उसने सोचा कि जो कुछ उसे कहना है, आज सब-कुछ कह-सुन लेगा; उसके बाद, या तो जिन्दगी-भर सुखसे रहेगा, और नहीं तो प्राण त्याग देगा। जीवनके ऐसे एक संकटके दिनमें राजीवने सिर्फ इतना ही कहा—'चलो,

ब्याह ही कर लें !' और उसके बाद पाठ भूले हुए विद्यार्थीकी तरह सकपकाकर चुप रह गया।

महामायाको मानो यह आशा ही न थी कि राजीव उससे ऐसा प्रस्ताव कर बैठेगा। इससे देर तक वह चुप बनी रही।

दोपहरीकी बहुत-सी अनिर्दिष्ट करुणध्वनियाँ होती हैं, वे इस सन्नाटेमें फूट निकलीं। हवासे मन्दिरका आधा-हिलगा-हुआ टूटा दरवाजा बीच-बीचमें बहुत ही क्षीण आर्तस्वरमें धीरे-धीरे खुलने और बन्द होने लगा। कभी मन्दिरके झरोखेमें बैठा हुआ कबूतर 'गुटुरगूँ-गुटुरगूँ' करता तो कभी बाहर सेमरके पेडपर बैठा हुआ कठफोड़ खुट-खुट करता, कभी सूखे पत्तोंके ऊपरसे सरसर करती हुई गिरगिट निकल जाती तो कभी सहसा मैदानकी तरफसे हवाका एक जोरका झोंका आता और उससे तमाम पेड़ोंके पत्ते झरझर आर्तनाद कर उठते; बीच-बीचमें सहसा नदीका पानी जाग उठता और टूटे घाटकी सीढ़ियोंपर छल-छल छपक-छपक चोट करता रहता। इन सब आकस्मिक अलस उदास शब्दोंके बीच बहुत दूरीपर एक पेड़के नीचे, किसी चरवाहेकी बाँसकी बाँसुरीमें मैदानी तान भी बज रही है। राजीवको महामायाके मुंहकी ओर देखनेका साहस न हुआ। वह मन्दिरकी भीतके सहारे सपनेकी-सी हालतमें चुपचाप खड़ा-खड़ा नदीके पानीकी तरफ देखता रहा।

कुछ देर बाद मुँह फेरकर राजीवने फिर एक बार भिखारीकी तरह महामायाके मुँहकी ओर देखा। महामायाने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।"

महामायाका सिर ज्यों ही हिला, राजीवकी आशा भी उसी वक्त जमीनपर पछाड खाकर गिर पडी। कारण, राजीव यह अच्छी जानता था कि महामायाका सिर महामायाके निजी मतानुसार ही हिलता है; और-किसीकी मजाल नहीं कि उसे अपने मतसे विचलित कर सके। अपने कुलका जबरदस्त अभिमान-स्रोत महामायाके वंशमे न-जाने किस युगसे वहता चला आ रहा है, भला आज वह राजीव जैसे अकुलीन ब्राह्मणके साथ व्याह करनेके लिए कैसे राजी हो सकती है! प्रेम होना और बात है, और व्याह करना और वात। कुछ भी हो, महामाया समझ गई कि उसके अपने ही विचारहीन व्यवहारके कारण राजीवका यहाँ तक दिमाग चढ गया है। और उसी वक्त वह वहाँसे चली जानेको तैयार हो गई।

राजीवने हालत देखकर जल्दीसे कहा—“मै कल ही यहाँसे चला जा रहा हूं ?”

महामायाने पहले तो सोचा, अब उसे ऐसा भाव दिखाना चाहिए कि जाओ चाहे रहो, इससे उसे क्या मतलब! पर दिखा न सकी। पैर उठाना चाहा, पर उठा नहीं; उसने शान्तभावसे पूछा—‘क्यों ?”

राजीवने कहा—“हमारे साहवका यहाँसे सोनापुरको तबादला हो गया है, वे जा रहे है, मुझे भी साथ लेते जायँगे।”

महामाया वहुत देर तक चुप रही। सोचने लगी, दोनोंके जीवनकी गति दो तरफ है; किसी आदमीको हमेशाके लिए

नजरबंद नहीं रखा जा सकता; इसलिए उसने चुपके हुए ओठोंको जरा खोलकर कहा—"अच्छा।" उसकी यह 'अच्छा' कुछ-कुछ गहरी उसास-सी सुनाई दी। और इतना ही कहके वह जानेको तैयार हुई; इतनेमें राजीवने चौंककर कहा—"भवानी बाबू!"

महामायाने देखा, भवानीचरण मन्दिरकी तरफ आ रहे हैं। समझ गई कि उन्हें उसका पता लग गया है। राजीवने महामायापर विपत्ति आते देख मन्दिरकी टूटी दीवार फलाँगकर भागनेकी कोशिश की। महामायाने हाथ पकड़कर उसे रोक लिया। भवानीचरण मन्दिरके भीतर पहुंचे; और सिर्फ एक बार चुपचाप दोनोंकी ओर स्थिर दृष्टिसे देखा।

महामायाने राजीवकी ओर देखते हुए अविचलित कंठसे कहा—"राजीव, मै तुम्हारे घर ही आऊँगी। तुम मेरे लिए राह देखना।"

भवानीचरण चुपचाप मन्दिरसे बाहर निकले। महामाया भी चुपचाप उनके पीछे हो ली। और राजीव हक्काबक्का-सा होकर वहीं खडा रहा, मानो उसे फाँसीका हुक्म सुनाया गया हो।

२

उसी दिन, रातको भवानीचरणने एक कसूमी रंगकी रेशमी साडी लाकर महामायाको दी; और कहा—"इसे पहन आ।"

महामाया उसे पहन आई। उसके बाद बोले—"चल, मेरे साथ चल।"

आज तक, भवानीचरणकी आज्ञा तो दूर रही, इशारे तकका भी किसीने उल्लंघन नहीं किया। महामायाने भी नहीं।

उसी रातको दोनों नदीके किनारे श्मशानकी ओर चल दिये। श्मशान-घाट ज्यादा दूर न था। वहाँ गंगायात्रीके घरमें एक वृद्ध ब्राह्मण मौतकी घडियाँ गिन रहा था, उसकी खटियाके पास दोनों जाकर खड़े हो गये। घरके एक कोनेमें पुरोहित ब्राह्मण भी मौजूद था। भवानीचरणने उससे इशारेमें कुछ कहा। वह शीघ्र ही शुभानुष्ठानकी तैयारियाँ करके पास आ खडा हुआ। महामाया समझ गई कि इस मौतके मेहमानके साथ उसका शुभविवाह होगा। उसने रत्ती-भर भी विरोध नहीं किया। पास ही जलती हुई दो चिताओंके प्रकाशमे उस अँधेरे-से घरमे मृत्यु-यंत्रणाकी आर्तध्वनिके साथ अस्पष्ट मन्त्रोच्चारण मिलाकर महामायाका विवाह कर दिया गया।

जिस दिन ब्याह हुआ उसके दूसरे ही दिन महामाया विधवा हो गई। इस दुर्घटनासे विधवाको रंचमात्र भी शोक न हुआ ; और राजीव भी अकस्मात महामायाके ब्याहकी खबर पाकर जैसा वज्राहत हुआ था, वैधव्य-संवादसे वैसा न हुआ , बल्कि उसे कुछ प्रसन्नता ही हुई। किन्तु वह भाव ज्यादा देर तक न टिक सका। तुरत ही उसपर और एक संवादकी बिजली-सी टूट पडी, जिससे वह तत्काल ही पछाड़ खाकर गिर पड़ा। समाचार यह था कि 'श्मशानमे आज बड़ी धूम है, महामाया सती हो रही है।'

पहले उसने सोचा कि साहबको खबर दे दे और उसकी मददसे इस अमानुषिक अत्याचारको जबरन रोक दिया जाय।

उसके बाद खयाल आया कि साहब तो सोनापुर रवाना हो चुका। राजीवको भी वह साथ ले जाना चाहता था, पर वह एक महीनेकी छुट्टी लेकर यहीं रह गया है।

महामायाने उसे जबान दी है, 'तुम मेरे लिए राह देखना।' उसकी वह किसी भी तरह उपेक्षा नहीं कर सकता। अभी तो उसने महीने-भरकी ही छुट्टी ली है; आवश्यक होनेपर वह दो महीने, तीन महीने, और अन्तमें साहबकी नौकरी छोड़कर दर दर भीख माँगकर गुजर करेगा, लेकिन फिर भी जिन्दगी-भर 'राह देखना' न छोड़ेगा।

शामके वक्त राजीव पागलकी-तरह दौड़कर या तो आत्महत्या या ऐसा ही कोई भीषण कार्य करनेकी तैयारी कर रहा था; इतनेमें बड़े जोरकी आँधीके साथ मूसलधार वर्षा होने लगी। ऐसी जोरकी आँधी चली कि राजीवको मालूम हुआ मानो अभी उसके सिरपर मकान ही टूटा पड़ता है। जब उसने देखा कि उसके अन्तःकरणके समान बाह्यप्रकृतिमें भी एक प्रलय-सा उठ खड़ा हुआ है तब उसे कुछ-कुछ शान्ति-सी मिली। उसे ऐसा लगने लगा कि जैसे खुद प्रकृतिने ही उसकी तरफसे एक तरहका प्रतिकार करना शुरू कर दिया है। वह खुद जितनी शक्तिका प्रयोग करना चाहता था किन्तु कर नहीं सकता था, स्वयं प्रकृति ही आकाश-पाताल एक करके, उससे कहीं ज्यादा शक्तिका प्रयोग करके, उसका काम पूरा कर रही है।

इसी समय बाहरसे किसीने दरवाजेपर जोरसे धक्का मारा। राजीवने झटपट उठके किवाड़ खोल दिये। घरमें भीगे-कपड़े

पहने एक स्रीने प्रवेश किया। मुँहपर उसके लम्बा घूँघट खिंचा हुआ था। राजीवने उसी समय पहचान लिया, यह तो महामाया है! उसने आवेग-भरे कंठसे पूछा—"महामाया! तुम चितासे उठ आई हो?"

महामायाने कहा—"हाँ, मैंने तुमसे वादा किया था कि मैं तुम्हारे घर आऊँगी। उसी प्रतिज्ञाको पालन करने आई हूं। लेकिन, राजीव, मै अब ठीक पहलेकी 'मै' नहीं हूं, मेरा सब-कुछ बदल गया है। सिर्फ मै अपने मनमे वही महामाया हूं। अब भी बोलो, अब भी मै अपनी चितामे वापस जा सकती हू, बोलो? और अगर तुम प्रतिज्ञा करो कि कभी भी मेरा तुम घूंघट न खोलोगे, मेरा मुंह न देखोगे, तो मै जिन्दगी-भर तुम्हारे साथ रह सकती हूं?"

मृत्युके हाथसे वापस मिल जाना ही बहुत है, उस समय और सब बातें तुच्छ मालूम देती है। राजीवने जल्दीसे कहा—"तुम जैसे चाहो, वैसे ही रहना। मुझे छोड जाओगी तो मै नहीं जी सकता।"

महामायाने कहा—"तो अभी चलो। तुम्हारा साहब जहाँ गया है, वहीं ले चलो मुझे।"

घरमें जो कुछ था, सब छोड-छाडकर राजीव महामायाको लेकर उस आँधी-मेहमें ही निकल पडा। ऐसी आँधी चल रही थी कि खडा होना कठिन था; आँधीके जोरसे कंकडियाँ उड-उड़कर बन्दूकके छर्रेकी तरह देहमें चुभने लगीं। दोनों-के-दोनों इस डरसे कि कहीं सिरपर पेड न टूट पडे, सडक छोडकर खुले मैदानमे

होकर चलने लगे। आँधीका जोर पीछेसे धक्का देने लगा, मानो इन्हें वह लोकालयसे छीनकर प्रलयकी ओर उड़ाये लिये जा रही हो।

३

[पाठक इस कहानीको कोरी कवि-कल्पना ही न समझें। जिन दिनों यहाँ सहमरणकी प्रथा प्रचलित थी उस समय ऐसी घटनाएँ कभी-कभी हो जाया करती थीं।]

महामायाके हाथ-पैर बाँधकर यथासमय चितामें रखके उसमें आग लगा दी गई थी। आग भी खूब जोरोंसे जल उठी थी। लेकिन उसी वक्त बड़े जोरकी आँधी आई और मूसलधार पानी पड़ने लगा। जो दाह करने आये थे वे जल्दीसे गंगायात्रीवाली कोठरीमें जा छुपे, और भीतरसे किवाड़ बन्द कर लिये। सभी जानते हैं कि ऐसे आँधी-मेहमें चिता बुझते देर नहीं लगती। इस बीचमें उसके हाथोंमें बँधा कपड़ा जलकर भस्म हो गया और हाथ मुक्त हो गये। असह्य दाह-वेदनामें मुंहसे वह कुछ बोल न सकी, तुरत उठकर बैठ गई, और पैरकी रस्सी खोल डाली। उसके बाद जगह-जगह जली-हुई साड़ीसे किसी तरह देह ढककर लगभग नंगी-सी चितासे उठकर पहले वह अपने घर आई। घरमें कोई था नहीं। सब श्मशानमें थे। दिआ जलाकर एक धोती पहनकर महामायाने एक बार दर्पणमें अपना मुंह देखा; और देखते ही दर्पण जमीनसे दे मारा। फिर कुछ देर खड़ी-खड़ी कुछ सोचती रही। उसके बाद मुँहपर लम्बा घूँघट खींचा और राजीवके घर चल दी। इसके बाद जो कुछ हुआ, सो पाठकोंको मालूम ही है।

४

महामाया अब राजीवके पास ही रहती है, लेकिन राजीवके जीवनमें सुख नहीं है। ज्यादा नहीं, दोनोंके बीच सिर्फ एक घूँघटका व्यवधान है। परन्तु वह घूंघट मृत्युके समान चिरस्थायी है, और मृत्युसे भी बढ़कर वेदनादायक। इसलिए कि निराशा मृत्युकी विच्छेद-वेदनाको धीरे-धीरे अचेतन कर डालती है, किन्तु इस घूंघटके विच्छेदने एक जीती-जागती आशाको प्रतिदिन प्रतिक्षण पीड़ित और व्यथित कर रखा है।

एक तो वैसे ही महामायाकी हमेशासे निस्तब्ध-नीरव प्रकृति है, उसपर उसके इस घूंघटके भीतरकी निस्तब्धता दूनी असह्य मालूम होने लगी। राजीव अब ऐसे रहने लगा जैसे उसे मौतकी एक चलती-फिरती पुतलीने घेर रखा हो। वह पुतली उसके जीवनको आलिंगन करके प्रतिदिन मानो उसे क्षीणसे क्षीणतर किये दे रही हो। राजीव पहले जिस महामायाको जानता था उसे तो उसने खो ही दिया। अब तो वह सिर्फ उसकी सुन्दर बाल्य-स्मृतिको ही अपने जीवनका सहारा बनाकर जी सकता है, लेकिन उसमें भी यह घूंघटवाली पुतली हमेशा उसके आसपास रहकर भरसक बाधा पहुंचाती रहती है। वह सोचता है, आदमी आदमीमे स्वभावसे ही काफी अन्तर है, और खासकर महामाया तो पुराणमे कहे-हुए कर्णकी तरह स्वाभाविक कवचधारी है। वह अपने स्वभावके चारों तरफ एक आवरण लेकर ही पैदा हुई है। उसके बाद, बीचमे, फिर मानो वह और-एक बार जन्म लेकर फिर और-एक आवरण ले आई है। रात-दिन पास रहती हुई भी वह इतनी दूर

चली गई है कि मानो राजीवसे उसके पास तक पहुंचा नहीं जाता, मानो वह केवल एक मायाकी लकीरके बाहर बैठकर अतृप्त तृषित हृदयसे इस सूक्ष्म किन्तु अटल रहस्यको समझनेकी कोशिश कर रहा है, जैसे नक्षत्र प्रत्येक रात्रिमें निद्राहीन निर्निमेष नत नेत्रोंसे अन्धकार रजनीके रहस्य जाननेके निष्फल प्रयासमे रात बिता दिया करते है। इस तरह, ये दोनों संग-रहित साथी भिन्न-भिन्न प्राणीके रूपमें बहुत दिनों तक एकसाथ बने रहे।

एक दिन, वर्षाऋतुमें, शुक्लपक्षकी दशमीकी रातको बादल फटे और चॉद दिखाई दिया। स्थिर चॉदनी रात सोती-हुई पृथ्वीके सिरहाने बैठी जागरण कर रही थी। उस रातको बिछौनेसे उठकर राजीव भी अपने जंगलेके पास जा बैठा। वर्षा और ग्रीष्मके संगमसे थके हुए बगीचेमेसे एक तरहकी सुगन्ध और झिल्लियोंकी चिक्चिक् आवाज कमरेमे आकर उसके मनोराज्यमे एक तरहकी अराजकता फैला रही थी। राजीव देख रहा था, बगीचेके अॅधेरेमें खड़े-हुए पेड़ोंके उस पार शान्त-स्थिर सरोवर मँजी-हुई चॉदीकी थाली-सा चमचमा रहा है। आदमी ऐसे समयमें साफ-साफ कोई बात सोच सकता है या नहीं, बताना मुश्किल है। पर हॉ, इतना कहा जा सकता है कि उसका सम्पूर्ण अन्तःकरण किसी एक दिशामें प्रवाहित हुआ करता है, उपवनकी तरह एक गन्धोच्छ्वास छोड़ता रहता है, रातकी तरह झिल्लियोंकी-सी ध्वनि करता रहता है। मालूम नहीं, राजीवने क्या-क्या सोचा। उसे मालूम हुआ कि मानो आज उसके पहलेके सब नियम टूट गये हैं। आज इस वर्षाकी रातने उसके सामने अपना बादलका घूँघट खोल डाला

है। और आजकी यह रजनी पहलेकी उस महामायाके समान निस्तब्ध सुन्दर और सुगम्भीर हो उठी है। होते-होते यकायक ऐसा हुआ कि राजीवका सारा अस्तित्व ही उस महामायाकी ओर दौडने लगा। स्वप्न-चालितकी तरह उठकर राजीवने महामायाके शयन-घरमें प्रवेश किया। महामाया उस समय सो रही थी।

राजीव पास जाकर खड़ा हो गया; मुँह झुकाकर देखा, महामायाके खुले हुए मुंहपर चाँदनी आ पडी है। किन्तु हाय, यह क्या! वह चिरपरिचित मुँह कहाँ गया! चितानलकी शिखा अपनी निठुर लहलहाती हुई रसनासे महामायाके बायें कपोलका थोड़ा-सा सौन्दर्य चाटकर वहाँ हमेशाके लिए अपनी राक्षसी क्षुधाका निशान छोड़ गई है!

शायद, राजीव चौंक पड़ा था। शायद, एक अव्यक्त ध्वनि भी उसके मुँहसे निकल पड़ी होगी। महामाया तुरत चौंककर जाग उठी। देखा, सामने राजीव खड़ा है। उसी घडी वह घूंघट खींचकर, पलंग छोड़कर, एकदम उठ खड़ी हुई। राजीव समझ गया कि अब उसके सरपर बिजली टूटना चाहती है। वह जमीनपर गिर पड़ा; और महामायाके पाँव छूकर बोला—"मुझे माफ करो महामाया, मुझे माफ करो।"

महामाया कुछ भी उत्तर न देकर, एक क्षणके लिए भी पीछेकी ओर न मुड़कर, घरसे बाहर निकल गई। राजीवके घर फिर वह कभी नहीं आई। फिर उसका कहीं भी पता न चला। उस क्षमाहीन चिर-प्रस्थानका क्रोधानल राजीवके सम्पूर्ण जीवनपर हमेशाके लिए एक सुदीर्घ दग्ध-चिह्न छोड़ गया।

कहानीकार

कहानी कैसे लिखी जाती है, अब मैंने सीख लिया है। बंकिम चटर्जी और सर वाल्टर स्कॉटकी रचनाएँ पढ़कर कोई खास लाभ हुआ हो, सो बात नहीं। लाभ कहाँसे और कैसे हुआ, अपनी पहली कहानीमें उसीका जिक्र करना चाहता हूं।

मेरे पिताकी रायें बहुत तरहकी थीं; लेकिन बाल-विवाहके खिलाफ वे, किताब या स्वाधीन बुद्धिसे, अपनी कोई खास राय कायम नहीं कर पाये थे। मेरा जब ब्याह हुआ था तब सत्रहसे निकलकर मैंने आठरहवीं सालमे कदम रखा था। कालेजमें थर्ड-ईयरमे पढ़ता था; और तब मेरे मनोक्षेत्रमे यौवनकी पहली दखिनी हवा बहने लगी थी; कितनी ही अलक्ष्य दिशाओंसे न जाने कितने अनिर्वचनीय गीत और गन्ध, कम्पन और मर्मर मेरे तरुण जीवनको उत्सुक बनाये डाल रहे थे, जिसकी हद नहीं; अब भी जब-कभी उन दिनोंकी याद आ जाती है तो छातीके भीतर लम्बी-गहरी साँसोंकी धोंकनी-सी चलने लगती है।

तब मेरी मा नहीं थी। हमारी सूनी घर-गृहस्थीमे लछमी स्थापित करनेकी गरजसे, मेरी पढ़ाई खतम होने तक सब्र किये बगैर ही, पिताजी बारह सालकी लड़की निर्झरिणीको अपनी पुत्रवधू बनाकर घर ले आये।

'निर्झरिणी' नाम ऐसा है कि सहसा पाठकोंके समक्ष उसका प्रचार करनेमें मुझे संकोच मालूम हो रहा है। कारण, मुझे शक है कि उनमेंसे बहुतोंकी काफी उमर हो चुकी होगी, बहुतसे स्कूल-मास्टर होंगे, कोई मुन्सिफ होंगे तो कोई सम्पादक; और वे मेरे ससुर साहबकी नाम-निर्वाचन-रुचिके अत्यधिक लालित्य और नवीनत्वपर हँसे बगैर नहीं रहेंगे। लेकिन मैं तब अर्वाचीन (जिसे आप अपरिपक्वबुद्धि, आधुनिक या नादान कुछ भी कह सकते है) था। विचार-शक्तिकी कोई बला मेरे सिर नहीं चढ़ी थी, इसलिए सगाईके समय ज्यों ही नाम सुना त्यों ही मैं चटसे कविता बना बैठा—

"निर्झरिणीका मीठा कलरव
सुनते ही मन मुग्ध हुआ;
प्रेमातुर हो चित्त-विहगम
बोल उठा, ओ पिया, पिया!"

अब तो काफी उमर हो चुकी है, और वकालत छोड़कर मुन्सिफी पानेके लिए काफी व्यग्र हो उठा हूं, फिर भी वह नाम अब भी मेरे कानोंमे पुराने वेहलाकी आवाजकी तरह और भी ज्यादा मुलायम होकर गूँज-गूँज उठता है।

प्रथम यौवनका प्रथम प्रेम बहुत-सी छोटी-मोटी बाधाओंकी वजहसे मधुर होता है। शरमकी बाधा, घरवालोंकी नजरकी बाधा, तजुरबेकी बाधा, इन सब पहाड़ियोंको लाँघकर प्रथम परिचयका जो आभास मिलता है, वह भोरके उजालेकी तरह रंगीन होता है, दोपहरकी धूपकी तरह स्पष्ट खुला-हुआ और वर्णच्छटा-विहीन नहीं होता।

हमारे उस नवीन परिचयके बीच मेरे पिता बिन्ध्याचलकी तरह खड़े हो गये। मुझे उन्होंने होस्टलमें निर्वासित करके अपनी 'ब्याहली' (पतोहू) को पढ़ाना शुरू कर दिया। मेरी यह कहानी बस यहींसे शुरू होती है।

ससुर साहब अपनी पुत्रीका सिर्फ नामकरण करके ही निश्चिन्त न थे, उन्होंने उसे पढ़ाने-लिखानेका भी काफी आयोजन किया था। यहाँ तक कि कई किताबें उसने कंठस्थ कर ली थीं। 'मेघनाद-वध' काव्य पढ़नेके लिए उसे हेमचन्द्रकी टीकाकी जरूरत नहीं पड़ती थी।

होस्टल जानेके बाद मुझे उसका परिचय मिला था। वहाँसे कितनी ही तरकीबोंसे पितासे छिपाकर मै उसे नव विरह-तापसे उत्तप्त चिट्ठियाँ भेजने लगा। उनमें मै, उद्धरण-चिह्न बगैर दिये ही, नवीन कवियोंके नाना काव्योंका कपड़छन करके अनेक कविताओंमें अपनी प्रेमवार्ता उंड़ेल दिया करता था। सोचा था, प्रणयिनीसे सिर्फ प्रेम आकर्षित करना ही काफी नहीं, श्रद्धा भी प्राप्त करनी चाहिए। और वैसी श्रद्धा पानेके लिए मातृभाषामे मनोहर कविता रचना मेरे बूतेसे बाहरकी बात थी; लिहाजा—

"मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः" अर्थात् और-और जौहरियोंने जिन मणिओंमे छेद कर रखा था, मेरी चिट्ठियाँ उन्हे सूतमें गूंथकर यथास्थान भेजा करती थीं। लेकिन, इतना विनय मै बिलकुल स्पष्टरूपसे नहीं प्रकट करना चाहता कि उनमें मणियाँ दूसरोंकी ही होती थीं, सिर्फ सूत-ही-सूत मेरा होता था।

और कालिदास भी शायद ऐसा नहीं करते अगर सचमुच ही मणियाँ उनकी चोरीकी होतीं।

परन्तु एक-दो चिट्ठियोंका जवाब पाते ही, उसके बाद फिर मैंने उद्धरण-चिह्न देनेमें कतई कंजूसी नहीं की। इतना तो मैंने साफ समझ लिया कि नववधू महोदया अपनी मातृभाषा खूब अच्छी तरह जानती हैं। उसकी चिट्ठियोंमे हिज्जेकी गलतियाँ थीं या नहीं, इसका फैसला मैं नहीं दे सकता; और न इस बहसमें ही पडना चाहता हूं कि उतनी योग्यताका मै हकदार हूं या नहीं। लेकिन, इतना मै जरूर समझता और मंजूर करता हूं कि साहित्य और भाषा-ज्ञानके बगैर वैसी चिट्ठियाँ हरगिज नहीं लिखी जा सकती थीं।

और मेरे लिए कोई अगर ऐसा कहे कि स्त्रीको विदुषी देखकर अच्छे पतिको जितना गर्व और आनन्द होना चाहिए उतना मुझे नहीं हुआ, तो यह मेरे प्रति अन्याय होगा। इसे झूठी बदनामीके सिवा और कुछ नहीं कहा सकता। फिर भी, इतना मै माने लेता हूं कि मेरे भावोंमें जरा-कुछ और भाव भी था। वह भाव ऊंचे दरजेका भले ही न हो, पर उसमे स्वाभाविक कठिनाई यह थी कि जिस पद्धतिसे मैं अपनी विद्याका परिचय दे सकता था वह पद्धति बालिका वधूके लिए दुर्गम थी। वह जितनी सी अंग्रेजी जानती थी उसके भरोसे उसे बर्क मेकलेके ढंगकी चिट्ठी लिखना मच्छड मारनेके लिए तोप दागनेके बराबर ही होता; मच्छडपर कोई असर नहीं होता, सिर्फ आवाज और धुआँ निकलकर ही रह जाता।

मेरे दो-तीन जिगरी दोस्त थे, उन्हें मैं अपनी स्त्रीकी चिट्ठियाँ वगैर दिखाये न रह सका। उनलोगोंने आश्चर्यके साथ कहा—"तुम्हारी तकदीर बुलन्द है जो ऐसी 'वाइफ' मिली !" यानी, दूसरे शब्दोंमें इसके मानी होते हैं, 'मुझ जैसा पति ऐसी स्त्रीके काबिल नहीं।'

निर्झरिणीसे पहले पत्रका उत्तर पानेके पहले ही मैंने जो कई चिट्ठियाँ लिख डाली थीं उनमें हृदयोच्छ्वास तो काफी था ही, साथ ही हिज्जेकी गलतियाँ भी कम न थीं। तब मुझे इसका कुछ खयाल ही न था कि स्त्रीको सावधानीसे पत्र लिखना चाहिए। सावधान होकर लिखता तो हो सकता है कि गलतियाँ कुछ जरूर कम होतीं, पर हृदयोच्छ्वास बिलकुल ही मारा जाता।

ऐसी हालतमें चिट्ठियोंकी मध्यस्थताको अलग करके मुकाबिलेमे प्रेमालाप करना कहीं ज्यादा निरापद है। लिहाजा, पिताजी जब आफिस रवाना हो जाते तब मुझे भी कॉलेजसे रफूचक्कर होना पड़ता। पढ़ाईका जो नुकसान होता, आपसमें प्रेमालाप करके हम दोनों उसको ब्याज समेत वसूल कर लेते। प्रेमके परीक्षागारमें मैं बार-बार विज्ञानके इस तथ्यकी जाँच करके निःसंशय हो चुका हूं कि विश्व-संसारमें कुछ भी बिलकुल नष्ट नहीं होता, एक आकारकी जो क्षति है दूसरे आकारका वही लाभ है।

इसी समय, मेरी स्त्रीकी चचेरी बहनका ब्याह आ पड़ा। हमलोग तो नियमानुसार लेन-देन करके छुट्टी पा गये, पर मेरी

स्त्रीको स्नेहके आवेगमें कविता बनाकर लाल कागजपर लाल स्याहीसे अच्छी तरह लिखकर बहनके नाम बगैर भेजे चैन नहीं पड़ा। वह रचना मालूम नहीं कैसे पिताके हाथ पड़ गई। पिताजी अपनी पुत्रवधूकी कवितामें रचनानैपुण्य, सद्भावसौन्दर्य, प्रसादगुण, प्रांजलता इत्यादि शास्त्रसम्मत नाना गुणोंका समावेश देखकर हदसे ज्यादा मुग्ध हो गये। अपने वृद्ध मित्रोंको दिखाई, उन लोगोंने भी हुक्केमे कस लगाते हुए कहा, "वाह भाई वाह! खूब लिखी है!" नववधूमें रचना-शक्ति है, यह बात किसीसे छिपी नहीं रही। सहसा इस तरहकी ख्याति फैल जानेसे रचयित्रीके कर्णमूल और कपोलोंपर सुर्खी आ गई थी, पर अभ्यासके अनुसार तुरत बिला गई। पहले ही कह चुका हूं कि संसारमे कोई भी चीज बिलकुल नष्ट नहीं होती, हो सकता है कि उसकी वह शर्मकी सुर्खी कोमल कपोलोंको छोड़कर मेरे कठिन हृदयके किसी अँधेरे कोनेमें आ छिपी हो।

लेकिन इसके मानी यह नहीं कि पतिके कर्तव्यमें मैंने कोई लापरवाही की हो। निष्पक्ष समालोचना करके अपनी स्त्रीकी रचनाकी त्रुटियोंका संशोधन करनेमे मैने कभी भी आलस नहीं किया। पिताने बिना-विचारे उसे जितना ही प्रोत्साहन दिया है, मैने सावधानीके साथ त्रुटियाँ दिखा-दिखाकर उसे उतना ही संयत किया है। मैने अंग्रेजीके बड़े-बडे लेखकोंकी रचनाएँ दिखा दिखाकर उसे मुग्ध करनेमें कोई कसर नहीं रखी। उसने कोयलपर एक कविता लिखी थी, मैंने शेलीकी 'स्काइलार्क' और कीट्सकी 'नाइटिङ्गेल' सुनाकर उसकी ऐसी हालत कर दी कि

उसके मुँहसे कुछ निकला ही नहीं। तब विद्याके जोरसे मैं भी मानो शेली और कीट्सके गौरवका भागीदार बन गया था। मेरी स्त्री भी अंग्रेजी साहित्यमेंसे अच्छी-अच्छी चीजें अनुवाद करके सुनानेके लिए मुझसे बार-बार अनुरोध करती रहती; और मैं भी गर्वके साथ उसके अनुरोधकी रक्षा करता रहता। सवाल उठ सकता है कि 'अंग्रेजी साहित्यकी महिमामें गरक होकर क्या मैंने अपनी स्त्रीकी प्रतिभाको नष्ट नहीं किया?' असलमें स्त्रियोंकी रमनीयताके लिए जरा-सी छायाका आच्छादन जरूरी है; मेरे पिता और उनके साथी इस बातको नहीं समझते थे, इसीसे मुझे इस कठोर कर्तव्यका भार अपने हाथमें लेना पड़ा था। निशीथका चाँद दोपहरके सूरजके समान हो उठे तो घड़ी दो-घड़ीके लिए वाहवाही दी जा सकती है, किन्तु बादमें सोचना पड़ता है कि कैसे उसे ढका जा सकता है।

मेरी स्त्रीकी रचनाओंको अखबारोंमें छपानेके लिए खुद मेरे पिता तथा और-भी बहुतोंने बहुत कोशिश की थी। पर निर्झरिणी इससे बहुत शरमाती थी। और मैंने उसकी उस शर्मकी रक्षा की है। अखबारोंमें तो नहीं छपने दी; पर मित्रमंडलीमें उसके प्रचारको मैं किसी भी तरह न रोक सका।

इसका नतीजा कहाँ तक बुरा हो सकता है, इस बातका ज्ञान मुझे कुछ दिन बाद हुआ था। तब मैं अलीपुर-कोर्टमें वकालत करता था। वसीयतनामेके एक मामलेमें मैं बड़े जोरोंकी पैरवी कर रहा था। वसीयतनामेकी भाषा थी बंगला। अपने मुवक्किलके अनुकूल उसके अर्थकी स्पष्टताको बाकायदा साबित कर रहा

था कि इतनेमें विरोधी पक्षका वकील उठकर बोल उठा—"मेरे विद्वान् मित्र अगर अपनी विदुषी स्त्रीसे इस वसीयतनामेके मानी समझ आते, तो शायद इस तरहकी विचित्र व्याख्या करके वे अपनी मातृभाषाको सबके सामने इस कदर पीडित और व्यथित हरगिज न करते।"

चूल्हेमे आग सुलगाते वक्त नाक-आँखसे पानी गिरने लगता है और उससे तबीयत परेशान हो जाती है, लेकिन घरमे आग लगती है तो उसका बुझाना ही मुश्किल हो जाता है। लोगोंकी अच्छी बात तो दब-दबू जाती है, पर बुरी और बदनामीकी बात जेठकी लूकी तरह जल्दसे जल्द चारों तरफ फैल जाती है। इस किस्सेका भी वही हाल हुआ; देखते-देखते सर्वत्र इसका प्रचार हो गया। मुझे डर था कि कहीं मेरी स्त्रीके कानों तक न पहुंच जाय, पर सौभाग्यसे वहाँ तक बात नहीं पहुंची; कमसे कम उसके मुंहसे तो मैने इस बातका कभी कोई जिक्र नहीं सुना।

एक दिन, एक अपरिचित भले आदमीसे मेरी मुलाकात हुई, तो उन्होंने छूटते ही पूछा—"आप ही है क्या श्रीमती निर्झरिणी देवीके पति?" मैने कहा—"मै उनका पति हूं या नहीं इस बातका मै जवाब नहीं देना चाहता; हाँ, वे मेरी स्त्री जरूर हैं।" बाहरके लोगोंमें 'स्त्रीके पति' के रूपमे नाम पानेको मै गौरवका विषय नहीं समझता।

और, 'यह कोई गौरवका विषय नहीं' यह बात एक और व्यक्तिने मुझे अनावश्यक स्पष्ट भाषामे याद दिला दी थी।

पाठकोंको पहलेसे ही मालूम है कि मेरी स्त्रीकी चचेरी बहनका ब्याह हो चुका है। उसका पति बहुत ही बर्बर और दुराचारी है। स्त्रीके प्रति उसका अत्याचार असह्य है। मैंने उस निर्दय निष्ठुर पाखंडीके अनाचारोंके विषयमें आत्मीय-समाजमें जिक्र छेड़ा था। नतीजा यह हुआ कि बातका बतंगड़ बनकर मामला साढू साहबके कानों तक पहुंच गया। फिर तो हजरतने मेरे ऊपर स्थायीरूपसे हमला शुरू कर दिया। मेरे विषयमें अभी तक वह सबसे गाता फिरता है कि अपने नामसे शुरू करके ससुरके नाम तक उत्तम-मध्यम-जघन्य अनेक प्रकारकी ख्यातिका वर्णन शास्त्रोंमें लिखा है, पर अपनी स्त्रीकी ख्यातिसे यशस्वी होनेकी कल्पना बड़े-बड़े कवियोंके दिमागमें भी नहीं आई।"

ये सब बातें लोगोंके मुँहजबानी चारों तरफ फैलती रहें तो स्त्रीका दिमाग कहाँ तक ठिकाने रह सकता है! उसके मनमें दम्भ आये बगैर नहीं सकता। खासकर पिताजीमें एक बुरी आदत यह थी कि वे निर्झरिणीके सामने ही हम दोनोंके भाषा-ज्ञानके सम्बन्धमें तुलनात्मक आलोचना करके खूब आनन्द अनुभव किया करते थे। एक दिन उन्होंने कहा—"हरिश जो बंगलामें चिट्ठियाँ लिखा करता है उनकी गलतियाँ तुम क्यों नहीं सुधार दिया करतीं बहू-रानी? मुझे एक चिट्ठी लिखी थी, उसमें उसने 'जगदिन्द्र' लिखनेमें दीर्घ ईकार बिठा दिया था।" सुनकर उनकी 'बहू-रानी' चुपके-चुपके मुसकराती रहीं। मैं भी उस बातको महज मजाक समझकर हँस दिया। लेकिन ऐसा मजाक अच्छा नहीं।

स्त्रीके दम्भका परिचय पानेमें मुझे देर न लगी। हमारे

मुहल्लेमे लड़कोंने एक क्लब बना रखी थी। उसके सदस्योंने एक दिन देशके एक प्रसिद्ध साहित्यसेवीके व्याख्यानका आयोजन किया; और उन्हें राजी भी कर लिया। साथ ही एक और प्रसिद्ध आदमीको सभापति तय कर लिया था, लेकिन ऐन वक्तपर उनकी तबीयत खराब हो जानेसे लडकोंने और कोई उपाय न देखकर मुझे आ घेरा। अपने ऊपर लड़कोंकी इस अकारण श्रद्धाको देखकर मै जरा-कुछ उत्फुल्ल हो उठा; बोला—"अच्छी बात है, पर विषय क्या है, सो तो बताओ?" उनलोगोंने कहा—"प्राचीन और आधुनिक बंगला साहित्य।" मैने कहा—"खैर कोई बात नहीं, दोनों ही मेरे जाने हुए है।"

दूसरे दिन सभामें जानेके पहले जलपान और पहननेके कपड़ोंके लिए स्त्रीको तागीद देने लगा तो उसने कहा—"क्यों, क्या बात है, इतनी जल्दी किस बातकी? कहीं अपने लिए लड़की देखने तो नहीं जा रहे?" मैने कहा—"एक बार देखकर ही नाक-कान पकड़ चुका हूं, दुबारा अब क्या देखूंगा!" उसने कहा—"तो बनठनके जानेकी इतनी जल्दी क्यों?"

गर्वके साथ मैंने उसे पूरी बात बता दी। सुनकर उसने जरा भी खुशी जाहिर नहीं की; व्याकुल होकर मेरा हाथ थाम लिया और बोली—"तुम्हारा दिमाग खब्त तो नहीं हो गया! नहीं नहीं, तुम नहीं जा सकोगे।"

मैने कहा—"राजपूतानियाँ बख्तर पहनाकर अपने पतियोंको लडाईमे भेजा करती थीं; और एक तुम हो कि व्याख्यान-सभामे भी नहीं भेज सकतीं?"

निर्झरिणी बोली—"अंग्रेजीमें व्याख्यान होता तो मुझे कोई डर नहीं था, लेकिन,—रहने दो, बहुतसे लोग आयेंगे, तुम्हे आदत नहीं, आखिर कहीं—"

'आखिर कहीं' के विषयमें कभी-कभी मैं भी चिन्ता कर लिया करता हूं; पर गलती भी तो आखिर आदमीसे ही हुआ करती है। राममोहन रायका एक गीत भी कभी-कभी याद आ जाता है, जिसमें कहा गया है, 'याद रखो, आखिरके वे दिन ऐसे भयंकर होंगे, जब कि दूसरे बोलेंगे और तुम रहोगे निरुत्तर।'

वक्ताओंके व्याख्यानके बाद, उठके खड़े होते समय सभापति महोदय अगर सहसा 'दृष्टिहीन नाड़ीक्षीण हिम-कलेवर' हालतमें बिलकुल निरुत्तर हो जायँ, तो क्या गति होगी ? इन सब बातोंको सोच-विचारकर पूर्वोक्त भागे हुए सभापति महोदयकी अपेक्षा मेरी तबीयत किसी भी अंशमें अच्छी थी ऐसा दम्भ मैं नहीं कर सकता।

फिर भी छाती फुलाकर मैंने स्त्रीसे कहा—"निर्झर, तुम क्या समझी हो कि—"

स्त्रीने कहा—"मैं कुछ भी नहीं समझती,—लेकिन आज बड़े जोरसे मेरा माथा पिड़ा रहा है, शायद बुखार आयेगा,—आज तुम मुझे अकेली छोड़के कहीं नहीं जा सकते।"

मैंने कहा—"यह और बात है। आज तुम्हारा चेहरा भी कुछ सुर्ख-सा दिखाई दे रहा है।"

उसके चेहरेकी वह सुर्खी साहित्य-सभामें मेरी दुरवस्थाकी कल्पना करके शरमके मारे थी या आनेवाले बुखारकी गरमीके

मारे, इस बातकी ऐतिहासिक खोज किये बगैर ही मैंने क्लबके सेक्रेटरीके नाम स्त्रीकी अस्वस्थताके कारण उपस्थित न हो सकनेकी मजबूरी जाहीर करते हुए चिट्ठी भेजकर छुट्टी पा ली।

कहनेकी जरूरत नहीं कि स्त्रीका बुखार जल्द ही उतर गया। मेरी अन्तरात्मा कहने लगी, 'और तो सब अच्छा ही हुआ, पर मेरी मातृभाषाके ज्ञानके सम्बन्धमें श्रीमतीजीके मनमें यह जो संस्कार बैठा हुआ है, सो अच्छा नहीं। उसने अपनेको बडी भारी विदुषी समझ रखा है,—कहीं ऐसा न हो कि मच्छडदानीके भीतर नाइट-स्कूल खोलकर वह मुझे बंगला पढ़ानेकी कोशिश न करने लगे।' मैंने मन-ही-मन कहा, 'ठीक है; अभीसे अगर स्त्रीके इस दम्भको दूर न किया गया, तो फिर आगे चलकर मेरी हालत वहुत ही शोचनीय हो जायगी।'

उसी रातको स्त्रीके साथ मेरी खटपट शुरू हो गई। अल्प-विद्या कितनी भयंकरी हो सकती है, पोपके काव्यसे उद्धरण देते हुए मैंने उसे अच्छी समझानेकी कोशिश की। और यह भी समझा दिया कि सिर्फ हिज्जे और व्याकरणकी अशुद्धियाँ बचाकर कुछ लिख लेनेसे ही कोई लेखक बन जाता हो सो बात नहीं, असल चीज है विचार। फिर खाँसता हुआ बोला—"ये सब बातें तुम्हारी 'व्याकरण-कौमुदी' मे नहीं मिलेंगी। इसके लिए मस्तिष्क चाहिए।" मस्तिष्क कहाँ है, यह बात उससे स्पष्ट नहीं कही; लेकिन फिर भी मैं समझता हूं कि बात अस्पष्ट नहीं रही। मैंने कहा—"कोई उल्लेख-योग्य रचना आज तक किसी भी देशकी किसी भी स्त्रीने नहीं की।"

सुनकर निर्झरिणीकी स्त्रीसुलभ बहसकी मात्रा तुरत अपनी सीमा तक पहुंच गई। उसने कहा—"तुमसे किसने कहा कि स्त्रियाँ नहीं लिख सकतीं! स्त्रियोंको तुमने इतना कमजोर समझ रखा है!"

मैंने कहा—"नाराज होनेसे क्या फायदा! कोई उदाहरण हो तो बताओ?"

निर्झरिणीने जवाब दिया—"तुम्हारी तरह अगर मैं इतिहास पढ़ी होती, तो जरूर मैं ढेरके ढेर उदारण पेश कर देती।"

यह बात सुनकर मेरा मन कुछ नरम पड़ गया। लेकिन बहस यहीं खतम नहीं हुई। जहाँ इसका अन्त हुआ, उसका वर्णन मैं पीछे करूंगा।

'उद्दीपना' नामकी एक मासिकपत्रिकाने अच्छी कहानीके लिए पचास रुपया पुरस्कार देनेकी घोषणा की थी। तय हुआ कि हम दोनों उस पत्रिकाको एक-एक कहानी लिखके भेजेंगे, देखें किसकी रचनापर पुरस्कार आता है।

रातकी घटना तो बस इतनी ही है। दूसरे दिन प्रभातके प्रकाशमें बुद्धि जब निर्मल हुई, तो दुबिधा होने लगी। मगर प्रतिज्ञा कर चुका था। इस मौकेको हरगिज नहीं छोड़ा जा सकता; जैसे भी हो, जीतना ही है। दो महीनेका समय हाथमें है, डर किस बातका?

मैंने 'प्रकृतिवाद' कोश खरीदा; और बंकिमकी किताबें भी ले आया। लेकिन बंकिमकी किताबें मेरी अपेक्षा मेरे अन्तःपुरमें कहीं ज्यादा परिचित हैं, इसलिए मुझे उस महान आश्रयको

छोड़ देना पड़ा। अंग्रेजी कहानियोंकी किताबें मैंने ढेर-की-ढेर पढ़ डालीं। बहुत-सी कहानियोंको तोड़-मरोड़कर मैंने एक कहानीका प्लॉट खड़ा किया। प्लॉट बहुत ही बढ़िया था। लेकिन मुश्किल यह हो गई कि भारतीय समाजमें वे सब घटनाएँ किसी भी हालतमें नहीं घट सकतीं। आखिर मुझे अति-प्राचीन कालमें पंजाबके सीमान्त-प्रदेशमे कहानीकी नींव डालनी पड़ी। वहाँ संभव-असंभव विचारका कोई खास डर न होनेसे मेरी लेखनीके आगे कोई बाधा ही नहीं रही। उद्दाम प्रेम, असंभव वीरता, भयंकर परिणाम वगैरह सरकसके घोड़ेकी तरह मेरी कहानीके चारों तरफ विचित्र गतिसे चक्कर लगाने लगे।

रातको मुझे नींद न आती, दिनमे रोटी खाते वक्त भातकी थालीमे दाल न डालकर तरकारीकी कटोरीमे उँड़ेल दिया करता। मेरी हालत देखकर निर्झरिणीने एक दिन बड़े विनयके साथ कहा—"मेरे गलेकी सौगंद है तुम्हे, तुम लिखो मत; मैं अपनी हार माने लेती हूं।"

मै उत्तेजित हो उठा, बोला—"तुम क्या यही समझती हो कि मैं दिन-रात कहानीके बारेमे ही सोचा करता हूं। बिलकुल वाहियात बात है। मुझे अपने मुवक्किलोंके मामलेंके बारेमे काफी दिमाग लगाना पड़ता है। तुम्हारी तरह कहानी और कविताकी बात ही रात-दिन सोचता रहूं इतनी यहाँ फुरसत किसे है?"

कुछ भी हो, अंग्रेजी प्लॉट और संस्कृत शब्द-कोशकी मददसे मैंने एक कहानी खड़ी कर ली। मनके किसी-एक कोनेमें

धर्म-बुद्धिकी प्रेरणा मुझे जरा पीड़ा देने लगी ; सोचने लगा, बेचारी निर्झरने अंग्रेजी-साहित्य नहीं पढ़ा ; उसका भाव-संग्रहका क्षेत्र अत्यन्त संकीर्ण है; मेरे साथ उसकी यह लड़ाई बिलकुल ही बेजोड़ है, कोई मुकाबिला ही नहीं हो सकता।

उपसंहार

कहानी भेज दी। बैसाखके अंकमें पुरस्कार-प्राप्त कहानी प्रकाशित होगी। यद्यपि मेरे मनमें किसी तरहकी आशंका नहीं थी, फिर भी, समय जैसे-जैसे नजदीक आने लगा वैसे-वैसे मन मेरा चंचल हो उठा।

बैसाखका महीना भी आ गया। एक दिन, अदालतसे जरा सवेरे-सवेरे लौटा तो खबर मिली कि बैसाखकी 'उद्दीपना' आई है और वह मेरी स्त्रीके पास है।

धीरे-धीरे दबे-पाँव मैं अन्तःपुरमें पहुंचा। अपने सोनेके कमरेमें झाँककर देखा कि मेरी स्त्री एक कोनेमें बैठी किसी किताबके पन्ने फाड़-फाड़कर जला रही है। दीवारसे लगे आईनेमें निर्झरिणीका जो प्रतिविम्ब दिखाई दिया उससे स्पष्ट मालूम हुआ कि थोडी देर पहले वह काफी आँसू बहा चुकी है।

अपने मनमें मैं बहुत खुश हुआ, लेकिन उसके साथ ही कुछ दया भी आई। बेचारीकी कहानी 'उद्दीपना' में नहीं निकली। पर इस जरा-सी बातपर इतना दुःख क्यों! असलमें, स्त्रियोंके अहंकारपर जरा-सी चोट पहुंचते ही उनका ऐसा ही हाल हो जाता है। उपाय क्या?

मैं चुपचाप दबे-पाँव वापस चला आया। 'उद्दीपना'

कार्यालयसे नगद दाम देकर बैसाखका अंक खरीद लाया। मेरी कहानी कहाँ प्रकाशित हुई है देखनेके लिए पन्ने उलटने लगा। सूची देखी, पुरस्कृत कहानीका शीर्षक 'विक्रमनारायण' नहीं, 'ननद' है, और उसके रचयिताका नाम, यह क्या, श्रीमती निर्झरिणी देवी !

देशमें मेरी स्त्रीके सिवा और-किसीका नाम भी निर्झरिणी है क्या ? कहानी खोलकर पढ़ने लगा। देखा कि निर्झरकी उस अभागिन चचेरी बहनका जीवन-वृत्तान्त ही शाखा-प्रशाखाओंके साथ फल-फूलकर कहानी बन गया है। बिलकुल ही घरेलू बातें हैं, सीधी-सादी भाषा है, लेकिन फिर भी, सारी चीज एक तसवीर-सी बनकर आँखोंके सामने घूमने-फिरने लगती है, और आँखोंमें आँसू भर आते हैं। यह निर्झरिणी मेरी ही 'निर्झर' है, इसमें सन्देह नहीं।

तब मै अपने शयन-घरके उस दाह-दृश्य और व्यथित रमणीके उस म्लान मुखकी याद करके बहुत देर तक चुपचाप बैठा रहा और न-मालूम क्या-क्या सोचता रहा।

रातको मै सोने गया तो स्त्रीसे बोला—"निर्झर, जिस कापीमें तुम लिखा करती हो वह कापी कहाँ है ?"

निर्झरिणीने कहा—"क्यों, उसे लेकर तुम क्या करोगे ?"

मैंने कहा—"उन्हे छपाना चाहता हूं मैं।"

उसने कहा—"रहने दो, ज्यादा मजाककी जरूरत नहीं।"

मैंने कहा—"नहीं मजाक नहीं। सचमुच छपाना है।"

निर्झरिणी बोली—"कहाँ गई मुझे मालूम नहीं।"

मैंने जरा-कुछ जिदके साथ ही कहा—"नहीं निर्झर, सो नहीं होनेका। बताओ, कहाँ है कापी ?"

निर्झर—"सच कहती हूं, वह अब नहीं है।"

मैं—"क्यों, कहाँ गई ?"

निर्झर—"जला दिया मैंने उसे।"

मैं चौंक पड़ा ; हाय-हाय, यह किया क्या उसने ; बोला—"ए ! यह क्या किया तुमने ! कब जलाई ?"

उसने कहा—"आज ही जलाई है। मै क्या जानती नहीं कि स्त्रीका लिखना खाक लिखना है ; स्त्रीकी रचना होनेसे लोग खामखा झूठी तारीफ कर दिया करते हैं !"

उसके बाद, निझरकी मैंने बहुत खुशामद-बरामाद की, पर आज तक उससे एक सतर भी न लिखा सका। इत्यलम्।

—हरिश्चन्द्र हालदार

ऊपर जो कहानी लिखी गई है, उसका करिब पन्दरा-आना बनावटी किस्सा है। मेरे पतीका भाषाज्ञान कितना कम है सो उनकी लिखी हुई कहानीसे ही भली-भाँती समझा जा सकता है। छी छी, अपनी स्त्रीको लेकर इस तरह कहानी लिखी जाती है कहीं ! इत्यालम्। —निर्झरिणी देवी

स्त्रियोंकी चातुरीके सम्बन्धमे देशी-विदेशी शास्त्र-अशास्त्रोंमे बहुत-सी बातें लिखी है, पाठक उन सबका खयाल रखते हुए आशा है धोखेमे न आयेंगे। मेरी कहानीकी भाषा और हिज्जेकी गलतियाँ किसने सुधारी हैं, सो मैं नहीं बताऊंगा। मेरे न बतानेपर भी विज्ञ पाठक अनुमान कर सकते हैं कि मेरी स्त्रीने

ऊपर जो दो-चार सतरें लिखी है उनमें जो हिज्जेकी गलतियाँ हैं वे इच्छाकृत हैं। अपने पतिको भाषा-विज्ञानका परम पंडित साबित करने और मेरी कहानीको बरसाती कहानीमें शुमार करनेका उन्होंने यह सबसे आसान तरीका निकाल लिया है। तभी तो कालिदास लिख गये हैं—"स्त्रीणामशिक्षित पटुत्वम्।" वे स्त्री-चरित्रको खूब अच्छी तरह समझते थे। मेरी भी अब मूषिक-शिशुओंके आँख खुलनेके समान आँख खुलने लगी हैं, और मैं भी समझने लगा हूँ। कालान्तरमें हो सकता है कि मैं भी कालिदास हो जाऊँ। कालिदासके साथ मेरा और-भी कुछ-कुछ सामंजस्य पाया जाता है। सुना है, कविवरने अपने नव-विवाहके बाद अपनी विदुषी स्त्रीको जो श्लोक रचकर सुनाया था उसमें 'उष्ट्र' शब्दसे रकारका लोप कर दिया था। शब्द-प्रयोगके सम्बन्धमें ऐसी दुर्घटनाएँ वर्तमान लेखकों द्वारा भी अकसर हो जाया करती हैं; लिहाजा, सब विषयोंपर गंभीर विचार करनेके बाद मुझे पूरी आशा हो रही है कि कालिदासका जो अन्तिम परिणाम हुआ था, मेरे लिए भी वह संभव हो सकता है। इत्यलम्। —हरिश्चन्द्र

यह कहानी अगर छपाई गई तो मैं मायके चली जाऊंगी।

—निर्झरिणी

मैं भी उसी वक्त सुसरालके लिए रवाना हो जाऊंगा।

—हरिश्चन्द्र

अनधिकार प्रवेश

एक दिन सवेरे, सड़कपर खड़े-खड़े, दो लड़कोंने आपसमे एक मुश्किल कामके लिए होड़ बदी। होड़का विषय था, 'कोई मन्दिरके बगीचेसे फूल ला सकता है या नहीं।' एक लड़का कह रहा था—"मैं ला सकता हूं।" और दूसरा कह रहा था—"हरगिज नहीं।"

सुननेमे तो काम आसान मालूम होता है, पर करनेमे क्यों कठिनाई है, इसे जरा विस्तारके साथ कहना जरूरी है।

स्वर्गीय पं० माधवचन्द्र तर्कवाचस्पतिकी विधवा स्त्री जयकाली देवी श्रीराधानाथजीके मन्दिरकी अधिकारिणी है। स्वर्गीय अध्यापकजीको संस्कृत-पाठशालासे जो तर्कवाचस्पतिकी उपाधि प्राप्त हुई थी, हजार कोशिश करनेपर भी वे अपनी स्त्रीके सामने एक दिनके लिए भी उसे प्रमाणित नहीं कर सके थे। किसी किसी पण्डितके मतानुसार वह उपाधि सार्थक हुई थी; कारण, तर्क और वाक्य सब-कुछ उनकी पत्नीके हिस्सेमे आया था, और पति-रूपमें वे उसका सम्पूर्ण फल भोगा करते थे।

सत्यकी प्रेरणासे इतना तो कहना ही पड़ेगा कि जयकाली ज्यादा बात नहीं करती थीं; पर अकसर दो-ही-एक बातमे, यहाँ तक कि नीरव रहकर ही प्रबल-से-प्रबल बतक्कडका भी मुँह बन्द कर देती थीं।

जयकाली कदमें लम्बी, मजबूत, पतली नाकवाली और बुद्धिमें बहुत तेज थीं। पतिकी मौजूदगीमे ही उनकी देवोत्तर-सम्पत्ति नष्ट होनेकी नौबत आ पहुंची थी। विधवाने अपनी बुद्धिसे उसे बचा लिया।

इस स्त्रीकी प्रकृतिमें पौरुषका अंश काफी था, इसलिए उनका सच्चा साथी-संगी कोई न था। स्त्रियाँ उनसे डरती थीं। पराई निन्दा और छोटी-छोटी बातें या 'अपना रोना' उनके लिए असह्य था। पुरुष भी उनसे डरते थे, क्योंकि गाँवके मुखियाओंके मन्दिर-सम्बन्धी महा आलस्यको वे इस तरह नीरव घृणापूर्ण तीक्ष्ण कटाक्षोंसे धिक्कारा करती थीं कि वह उनकी स्थूल जड़ताको भेदकर अन्तर तक पहुंच जाता था।

इस प्रौढ़ विधवामें कठोरतासे घृणा करने और उस घृणाको कठोरतासे प्रकट करनेकी असाधारण शक्ति थी। न्यायमे जिसे वे अपराधी ठहरा देतीं, उसे बात और बिना-बात, भाव और भंगी सब तरहसे बिलकुल जलाती चली जा सकती थीं।

गाँवके हरएक क्रिया-कर्ममे, विपद या सम्पदमें, उनका उत्साहित हाथ बराबर काम करता था। सब जगह वे अपने लिए गौरवका स्थान बिना कोशिशके बहुत ही आसानीसे प्राप्त करती थीं। जहाँ वे मौजूद रहतीं वहाँ वे ही सबके ऊपर प्रधान पदपर होतीं, इसमें स्वयं उन्हे अथवा उपस्थित किसी भी व्यक्तिके मनमे सन्देह होना असम्भव था।

रोगीकी सेवामें वे सिद्धहस्त थीं; पर रोगी उनसे यमके समान डरता था। पथ्य या नियममे तिल-भर भी इधर-उधर होते ही

उनका क्रोधानल रोगके तापसे भी अधिक उत्तप्त हो जाता, जिससे रोगीकी दशा और भी खराब हो जाती।

यह दीर्घकाया कठिन विधवा विधाताके कठोर नियमदण्डकी तरह सर्वदा गाँवके मस्तकपर उद्यत रहती थी; कोई भी उससे स्नेह या उपेक्षा करनेका साहस नहीं करता। गाँवके सबके साथ उनका सम्बन्ध था, किन्तु फिर भी वे अकेली थीं।

विधवाके कोई सन्तान न थी। बिना मा-बापके दो भतीजे उनके घर पले थे। कोई पुरुष अभिभावक न होनेसे उनपर किसी तरहका शासन न था; फिर भी कोई यह नहीं कह सकता कि स्नेहान्ध बुआके लाड़-प्यारसे वे बिगड़े जा रहे हैं। उनमेंसे बड़ेकी उमर थी अठारह साल। बीच-बीचमें उसकी सगाईकी चर्चा छिड़ती थी, और लड़का भी इस मामलेमें दिलचस्पी लेने लगा था। पर 'बुआजी'ने उसकी इस सुख-वासनाको एक दिनके लिए भी पनपने नहीं दिया। और-और स्त्रियोंकी तरह किशोर नव-दम्पतिका नवीन प्रेमोद्गम-दृश्य उनकी कल्पनामें अत्यन्त उपभोग्य और मनोरम प्रतीत नहीं होता था। बल्कि उनकी दृष्टिमें तो यह कल्पना ही अत्यन्त हेय थी कि ब्याह करके अन्य गृहस्थोंकी तरह उनका भतीजा भी आलस्य-विलास और पत्नीके प्रेममें पड़ा-पड़ा फूलता रहे। वे कठोरताके साथ कहा करतीं कि पुलिन पहले रोजगार करना शुरू करे, तब उसका ब्याह होगा। बुआके मुँहसे ऐसी कड़ी बात सुनकर पाड़-पड़ोसिनोंके हृदय फट-फट जाते।

मन्दिर ही जयकालीका सबसे बड़ा अपना और प्यारा धन था। ठाकुरजीके शयन-वसन-स्नानाहारमें तिलमात्र भी त्रुटि

नहीं हो पाती थी। पुजारी ब्राह्मण दो देवताओंकी अपेक्षा इस एक मानवीसे बहुत ज्यादा डरता था। पहले एक जमाना था जब देवताका प्राप्य नैवेद्यादि देवताको पूरा नहीं मिलता था। कारण, पुजारी ब्राह्मणकी एक और पूजाकी प्रतिमा गुप्त मन्दिरमें थी। उसका नाम था निस्तारिणी। गुप्त रूपसे घी, दूध, मलाई, मीठा आदि नैवेद्य स्वर्ग और नरक दो जगह बँट जाया करता था। परन्तु अब, जयकालीके शासनमें पूजाका सेन्ट-पर-सेन्ट हिस्सा ठाकुरजीके ही भोगमें आता है,- उपदेवताओंको जीविकाके लिए अन्यत्र शरण लेनी पड़ी है।

विधवाके यत्न और प्रयत्नसे मन्दिरका आँगन साफ-सुथरा चमका करता है,- कहीं एक तृण भी अव्यवस्थित नहीं पड़ा रहता। एक तरफ मॉचेपर माधवी-लता है, उसका सूखा पत्ता नीचे पड़ते ही जयकाली उसे उठाकर बाहर फेंक देती है। मन्दिरकी सजावट सफाई और पवित्रतामें कहीं तिलमात्र भी व्याघात हो जाय तो विधवाके लिए वह असह्य हो जाता। पहले मुहल्लेके लड़के आँख-मिचौनी खेलनेके लिए इस ऑगनका थोड़ा-बहुत उपयोग किया करते थे और कभी-कभी बकरीके बच्चे आकर माधवी-लताका कुछ अंश खा जाया करते थे। परन्तु अब वे बातें हवा हो गईं। किसी खास पूजा-पाठ या उत्सवके दिन भले ही लड़के ऑगनके भीतर आ जायँ, वर्ना किसीकी मजाल क्या कि कोई भीतरको झाँके भी! और क्षुधातुर बकरीके बच्चेको तो पत्तेके बदले लाठी खाकर दरवाजेपरसे ही अपनी अज-जननीका आह्वान करते हुए भाग जाना पड़ता।

कोई भी अनाचारी व्यक्ति, फिर चाहे वह बिलकुल अपना ही आदमी क्यों न हो, देवालयके प्रांगणमें प्रवेश नहीं कर पाता था। एक बार जयकालीके एक यवन-करोंसे परिपक्क कुक्कुट-मांसभक्षी भग्निपतिने गाँवमें आकर मन्दिर-प्रांगणमें प्रवेश करना चाहा था, किन्तु जयकालीने तुरन्त ही उसका विरोध किया और नहीं आने दिया। इसपर सहोदरा बहनसे उनका हमेशाके लिए विच्छेद हो गया। इस देवालयके सम्बन्धमें विधवाकी तरफसे इतनी अधिक अतिरिक्त अनावश्यक सतर्कता थी कि जन-साधारणकी दृष्टिमें वह निरा पाखण्ड ही मालूम होता था।

जयकाली और सब जगह कठिन-कठोर उन्नत और स्वतन्त्र थीं, सिर्फ एक इस मन्दिरके सामने ही उन्होंने परिपूर्ण-रूपसे आत्म-समर्पण किया था। इस प्रतिमाके आगे वे एकान्तरूपसे जननी, पत्नी, दासी थीं; उनके सामने वे सतर्क, सुकोमल, सुन्दर और सम्पूर्ण विनम्र थीं। यह पत्थरका मन्दिर और पाषाणकी प्रतिमा उनके निगूढ़ नारी-स्वभावका एकमात्र चरितार्थताका विषय था। उनके लिए वही पति, वही पुत्र, वही संसार, वही सब-कुछ था।

इसीसे पाठक समझ सकते हैं कि जो लड़का मन्दिरके आँगनमें जाकर फूल तोड़नेकी होड़ बद रहा था उसके साहसका क्या ठिकाना! वह था जयकालीका छोटा भतीजा नलिन। वह अपनी बुआको अच्छी तरह जानता था, फिर भी उसकी आवारा प्रकृति शासनके वश नहीं हुई थी। जहाँ विपत्ति होती वहीं उसका विशेष आकर्षण होता; और जहाँ शासन होता वहीं उसके उल्लङ्घनके लिए उसका चित्त चंचल हो उठता।

सुनते हैं, बचपनमें उसकी बुआका स्वभाव भी ऐसा ही था।

जयकाली उस समय मातृ-स्नेह-मिश्रित भक्तिके साथ देवताकी ओर एकदृष्टिसे देखती हुई दालानमें बैठी माला जप रही थीं।

लडका पैर दबाये चुपचाप पीछेसे आकर आँगनमें खडा हो गया। देखा कि नीचेकी शाखाओंमें फूल नहीं हैं, पूजाके लिए तोड लिये गये हैं। तब वह धीरे-धीरे बहुत ही सावधानीके साथ माँचेपर चढा। ऊँची शाखापर दो-एक अधखिली कलियाँ देखकर ज्यों ही उसने शरीर और हाथको आगे बढाया, त्यों ही उसके बोझसे माँचा टूटकर चरचराता हुआ नीचे आ गिरा; उसपर आश्रित लता और लड़का दोनों एकसाथ जमीनपर दिखाई दिये।

जयकाली झटपट उठकर दौड़ी आईं और अपने भतीजेकी करतूत देखी। जोरसे बाँह पकड़कर उसे उठाया। चोट काफी लगी थी, पर उस चोटको सजा नहीं कहा जा सकता; क्योंकि वह अज्ञान जड़की चोट थी। इसलिए ऊपरसे गिरे हुए बालकके व्यथित शरीरपर जयकालीके सज्ञान सजीव हाथोंकी मार पडने लगी। लडकेने एक बूँद भी आँसू न गिराकर चुपचाप सब सह लिया। फिर उसकी बुआ उसे घसीटकर भीतर ले गईं और कोठरीमें बन्द कर दिया। उस दिन शामको उसे खाने नहीं दिया गया।

खाना-बन्दीकी बात सुनकर नौकरानी मोक्षदाको बड़ी दया आई; उसने डबडबाती हुई आँखोंसे बच्चेको माफ करनेके लिए मिन्नत की। पर जयकालीका मन नहीं पसीजा। पंडितानीसे छिपाकर भूखे बच्चेको कोई खाना खिला दे, इतना दुस्साहस किसीमें न था।

आदमी बुलवाकर मॉचा ठीक करानेके लिए कहकर फिर वे माला लेकर दालानमें बैठ गईं। मोक्षदा फिर कुछ देर बाद डरती हुई उनके पास पहुंची, बोली—"दादीजी, लल्ला-बाबू भूखके मारे रो रहे हैं, उनके लिए थोड़ा-सा दूध पहुंचा दूं?"

जयकालीने अविचलित दृढ़ताके साथ कहा—"नहीं।"

मोक्षदा लौट गई।

पासकी कोठरीसे नलिनका करुण-क्रन्दन क्रमशः क्रोधके गर्जनके रूपमें परिणत हो रहा था। अन्तमें बहुत देर बाद उसकी व्याकुलताका श्रान्त उच्छ्वास रह-रहकर जपमें बैठी हुई बुआके कानोंमें ध्वनित होने लगा।

नलिनका क्रन्दन अब श्रान्त होकर थमनेको आया; इतनेमें और-एक जीवकी भयसे व्याकुल करुण आर्तध्वनि सुनाई देने लगी, और उसके साथ ही दूरसे उसका पीछा करनेवाले आदमियोंके शोर-गुलने मन्दिरके सामनेवाले रास्तेमें आकर एक विचित्र रूप धारण किया।

सहसा प्रांगणमें किसीका पदशब्द सुनाई दिया। जयकालीने पीछेको मुड़कर देखा, जमीनपर गिरी हुई माधवीलता हिल रही है!

गुस्सेके साथ बुलाया—"नलिन!"

किसीने जवाब नहीं दिया। समझ लिया कि जिद्दी नलिन कोठरीसे किसी तरह निकलकर फिर उन्हें गुस्सा दिलाने आया है।

तब बहुत ही कठोरतासे ओठ चबाती हुई विधवा आँगनमें उतर आई।

लताकुञ्जके पास आकर फिर बुलाया—"नलिन!"

कोई जवाब नहीं मिला। झाड़ी उठाकर देखा, एक बहुत ही गन्दा सूअर प्राणोंके डरसे जान बचानेके लिए उसमे आ छिपा है।

जो 'लता-वितान' इस ईंटकी दीवारके भीतर वृन्दावनका संक्षिप्त प्रतिरूप है, जिसकी विकसित कुसुम-मंजरीका सौरभ गोप-गोपियोंकी सुगन्धित निश्वासकी याद दिलाता है और कालिन्दी-तीरके सुख-विहारके सौन्दर्य-स्वप्नको जाग्रत कर देता है, विधवाकी उसी प्राणाधिक प्रिय सुपवित्र नन्दनभूमिमें अचानक ऐसी वीभत्स दुर्घटना हो गई!

पुजारी ब्राह्मण लाठी हाथमें लिये दौड़ा आया।

जयकालीने हाथ उठाकर उसे मना कर दिया और जल्दीसे आगे बढ़कर मन्दिरका दरवाजा बन्द कर दिया।

थोडी देर बाद ही, ताड़ी पिये-हुए मतवाले डोमोंका झुंड मन्दिरके दरवाजेपर आ पहुंचा, और अपने बलिके जानवरके लिए शोर मचाने लगा।

जयकालीने बन्द दरवाजेके भीतरसे कहा—"जा जा, भाग यहाँसे! देवताका मन्दिर मत छूना।"

डोम वापस चले गये। जयकाली पण्डितानीजी अपने मन्दिरमें अपवित्र जानवरको ठहरने देंगी यह प्रत्यक्ष देखकर भी उन लोगोंने विश्वास नहीं किया।

इस मामूली घटनासे अखिल जगतके सर्वजीवोंके महादेवता परम प्रसन्न हुए; परन्तु क्षुद्र गाँवका 'समाज'-नामधारी अतिक्षुद्र देवता अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा।

छल या धोखेबाजीसे जो नफरत होती है वह उसके नतीजेपर गौर करके नहीं होती बल्कि वह एक सहज-स्वाभाविक उन्नत सरलताका गुण है। जैसे जवान आदमी आसानीसे सीधा होकर खड़ा हो सकता है उसी तरह अपने-आप तनदुरुस्त जवान राष्ट्र स्वभावतः सचाईपर चलता है।

अगर कोई बड़े-बूढे विज्ञ व्यक्ति ऐसा समझते हों कि यह बात बिलकुल झूठ है, हमारा स्वाभाविक अधिकार होते हुए भी स्वाभाविक योग्यता हममें नहीं भी हो सकती है, लिहाजा उस हालतमें पराधीनता मान लेना ही ठीक है, तो, बात चाहे कितनी ही प्रामाणिक क्यों न हो, फिर भी यह बात कहनी ही पड़ेगी कि जिस राष्ट्रके मगजमे ऐसी युक्तिका उदय हुआ है उसका जो-कुछ होना था सो हो चुका।

और चाहे जो भी हो, जिन्दगीके शुरुआतमें ऐसी समझ हरगिज कामकी नहीं। हमारा काम हमें खुद ही करना पड़ेगा। और-कोई कर दे तो 'काम' हो सकता है, पर उससे हमारी भलाई हरगिज नहीं हो सकती। 'काम' से आदमी बड़ा है। मशीनोंसे काम होता है, पर आदमी नहीं होते। ऐसे स्वाभाविक विश्वासके बलपर जो राष्ट्र काम करना शुरू करता है वही काम कर सकता है। वह बहुत-सी गलतियाँ करेगा; परन्तु उसके आदमी बननेकी उम्मीद है।

दूसरी तरफ, युक्तियोंकी आँख उपाड़कर जीवन-धर्मकी गतिके आगे बाँध बाँधकर आदमीकी आजादीकी पूंजीको पूरी तरह जब्त करके किसी समाजको मशीनके माफिक गढ़ डालनेसे उससे बिना

किसी विरोधके नियमित रूपसे काम लिया जा सकता है, मगर इन्सानियतका खातमा ही समझो। वहाँ विचार युक्ति आत्म-कर्तृत्व और उसके साथ साथ गलतफहमी विरोध सन्देह आदि मानवके जो गुण है वे खतम हो जायेंगे; सिर्फ मशीनका जो गुण 'काम करना' है वही चलता रहेगा॥

परन्तु, 'गलती न करनेवाली मशीन' और 'गलती करनेवाले आदमी' इन दोनोंमेसे किसी-एकको पसंद करना पड़े, तो 'आदमी' को पसंद करना पड़ेगा। गलतफहमीसे बहुधा सत्यका जन्म होता है, पर मशीनसे किसी भी हालतमे आदमी नहीं निकल सकता।

आदमीकी सब तरहकी आजादीको हड़पकर जो इस बातका गौरव करते हैं कि 'देखो, हमारे समाजमें कैसी आश्चर्यजनक शृङ्खला और सुव्यस्था है', वे वास्तवमें मनुष्यत्वके प्रति अश्रद्धा ही प्रकट करते हैं।

जो बात आज़ादीके बारेमें कही गई है सत्यके सम्बन्धमें भी वही बात है। कम उमरमें खालिस सत्यपर जैसी उज्ज्वल श्रद्धा रहती है, जरा ज्यादा उमर होनेपर बहुतोंकी वह श्रद्धा मलिन हो जाती है। जो यह कहते हैं कि सत्य सबके कामकी चीज नहीं, बहुतसे मौकोंपर उससे उलटी परेशानी ही होती है, और उसे अधिकारीके भेदके अनुसार थोड़े-बहुत झूठके साथ मिलाकर उसका बँटवारा कर देना जरूरी है, वे बहुत ही पक्की बात कहते है इसमें शक नहीं; पर इतनी ज्यादा पक्की बात आदमीकी जबानपर जेब नहीं देती।

जो सच्चे आदमी हैं, जिनका मन साफ है, जिनमे पौरुष है,

वे कहते है कि 'नतीजा हमारे हाथमे नहीं; हम तो जो सच है सो कहेंगे, लोग समझें या न समझें, विश्वास करें चाहे न करें।'

अब सवाल यह है कि हम नवीन भारतीय अपनेको किसमें शामिल देखना चाहेंगे, पुरानी जातिमें या नई जातिमें? जैसा चलता आया है वैसा ही चलने देंगे या जीवन-धाराको फिरसे बदलकर अच्छे ढंगसे चलायेंगे?

अगर हमारा ऐसा विश्वास हो कि पहले हम कभी भी 'एक जाति' (एक नेशन) नहीं थे, नई शिक्षाके साथ हमे राष्ट्रीय भावका यह नया स्वाद मिला है. धीरे-धीरे मनमें अगर ऐसे एक नये संकल्पका उदय हो रहा हो कि अपने देशमे इन सब इकट्ठे-हुए हृदयोंको, आज असीम समयके विशाल क्षेत्रमें बोकर, अङ्कुरित करके हमें उनका पूर्ण विकास करना होगा, सबमें एकसा जीवन-प्रवाह सञ्चारित करके एक अपूर्व शक्तिशाली विराट पुरुषको जाग्रत करना होगा; हमारा देश एक खास और अलग देह धारण करके विपुल मनुष्य-समाजके लिए अपनी आजादीका हक हासिल करेगा और इस विश्वव्यापी चलाचलकी हाटमें वह बिना किसी सङ्कोचके असीम जनतामे निरलस निर्भीक होकर लेन-देन करता रहेगा; और अन्तमे अपनी ज्ञानकी खान, अपना कार्यका क्षेत्र, अपना प्रेमका रास्ता सर्वत्र सबके लिए खोल देगा, तो, हमें अपने मनके अन्दर विश्वासको दृढ़ करना ही पड़ेगा; और तभी 'राष्ट्रकी पहली पूंजी' जो आजादी और सचाई है, जिसे एक शब्दमें वीरत्व या बहादुरी कहा जा सकता है, बड़े-बूढ़ों जैसी फजूलकी बहसका सहारा लेकर आदत जरूरत और सन्देहकी बात कहकर उसे देश-निकाला देनेसे

काम नहीं चलेगा। जहाँ युक्तियोंका स्वाभाविक अधिकार है वहाँ शास्त्रको राजा मानकर, जहाँ स्वभावका पैत्रिक सिंहासन है वहाँ कृत्रिमताको सिंहासन सौंपकर हमने अब तक सहस्रबाहु पराधीनता-राक्षसको समाजके देवासनपर बिठा रखा है; और स्वाधीन मनुष्यत्वको धर्म और समाजमें, दैनिक क्रियाकलापमें सूच्याग्र-भूमि न छोड़नेको ही हम ऊँचेसे ऊँचा मनुष्यत्व समझते आ रहे है। क्या यह ठीक है ?

जब तक हम विच्छिन्नरूपसे अलग-अलग अपने-अपने घरकी दीवारोंके अन्दर बन्द होकर रहते थे तब तक इस तरह काम चल जाता था। मगर आज, आज अगर हम 'एक जाति' या 'एक राष्ट्र' बनाना चाहते है, तो जितने भी प्राचीन आराध्य पत्थर हमारे मनुष्यत्वकी छातीपर बैठे-हुए उसकी सारी शक्ति और स्वाधीन पौरुषको पीसे डाल रहे हैं, उन्हें जल्दसे जल्द यथायोग्य भक्ति और विच्छेद-वेदनाके साथ विसर्जन कर देना ही ठीक है।

'मा मा हिंसीः'

[मुझे मत मारो]

आदमीका समस्त प्रार्थनाओंमें यह जो एक प्रार्थना देश-देशमें युग युगमे चली आ रही है कि 'मा मा हिंसीः' यानी 'मेरा नाश मत करो', 'मौतसे मुझे बचाओ', वास्तवमे यह एक बडे आश्चर्यकी बात है। जो शारीरिक मृत्यु उसकी अवश्य ही होगी उससे बचनेके लिए आदमी प्रार्थना नहीं कर सकता; कारण ऐसी व्यर्थका प्रार्थना करनेसे उसे कोई लाभ नहीं। वह जानता है कि मौतसे बढकर सुनिश्चित सत्य और कुछ भी नहीं; दैहिक जीवनका विनाश एक-न-एक दिन होगा ही। इस विषयमे उसके मनमे किसी भी तरहका सन्देह नहीं।

लेकिन, जब वह कहता है कि 'मुझे मत मारो' तब वह क्या कर रहा है यह बात उसकी अन्तरात्माकी ओर देखते ही साफ समझमे आ जाती है। ऐसा भी अगर होता कि उसकी देह हमेशा बनी रह सकती, तो भी विनाशसे उसे कोई नहीं बचा सकता। कारण वह जो प्रतिक्षणका विनाश है। एकके बाद एक हमारे जीवनपर कितनी तरहकी मौतें आती रहती हैं, कोई ठीक है! जिन्दगीके छोटेसे समयमे बूढ होकर बाहरके सुख-दुःखोंकी कितनी चोटें हमपर पडती है और उससे लगातार टूटकर बिखरकर जिस जिन्दगीको हम ढोते रहते हैं, इससे तो हम रोजमर्रा ही मरते रहते हैं। जिस घरके अन्दर हम अपने जीवनको

बन्द रखनेकी कोशिश करते हैं उसीमें जीवन कितनी मौतें मरता रहता है, कितना प्रेम और कितना बंधुत्व मरता रहता है, कितनी इच्छा और कितनी आशाएँ मरती रहती हैं, कोई ठीक है ! इन लगातार होनेवाली मौतोंकी चोटसे हमारा सारा जीवन अत्यन्त व्यथित और पीड़ित हो उठता है।

जिन्दगीके अन्दर यह जो मौतका दुःख-दर्द हमें बराबर सहना पड़ता है, इसकी वजह क्या, यही न कि हम दो जगह रहते हैं। हम परमात्मामें भी हैं, और संसारमें भी हैं। हमारे एक तरफ है 'अनन्त' और दूसरी तरफ है 'सान्त'। 'अनन्त'का कोई अन्त नहीं और 'सान्त'का अन्त है। इसीलिए आदमी बराबर सिर्फ यही सोचा करता है कि क्या करनेसे इन दोनों तरफोंको सत्य किया जा सकता है, कैसे अनन्त और सान्तको एक साँचेमें ढाला जा सकता है। हमारे इस संसारके पिता, जो इस पार्थिव जीवनका सूत्रपात कर गये हैं, सिर्फ उन्हींको पिता मानकर हमारे अन्तःकरणको संतोष नहीं होता। कारण हम जानते है कि दीखनेवाली यह शारीरीक जीवन खतम हो जायगा। इसीसे हम दूसरे एक पिताको पुकार रहे हैं जो केवलमात्र इस पार्थिव जीवनके ही नहीं बल्कि चिरजीवनके पिता हैं। उनके पास तक पहुंच जायँ तो हम मृत्युमे वास करते हुए भी अमृतलोकमे पहुच सकते हैं; यह आश्वास, चाहे किसी भी तरहसे हो, हमे अपनी अन्तरात्मासे ही मिला है। इसीलिए राह चलते-चलते आदमी क्षण-क्षणमे ऊपरकी ओर ताका करता है। इसीलिए संसारके सुख और भोग-विलासोंमे रहते हुए भी उसकी आत्मामें एक

तरहकी वेदना जाग उठती है; और तब वह अपनी इच्छासे ही परम दुःखको अपनाने और ढोनेको तैयार हो जाता है। क्यों? क्योंकि वह समझ जाता है कि आदमीके अन्दर कितना बड़ा सत्य है, कितनी बड़ी चेतना है, कितनी बड़ी ताकत है। जब तक इन्सान छोटी-छोटी बातोंके लिए मरता रहेगा तब तक दुःखपर दुःख, मुसीबतपर मुसीबत, चोटपर-चोट उसपे पडती ही रहेगी; कौन उसे बचा सकता है? लेकिन ज्यों ही उसे अपने दुःख और चोटोंके अन्दर उस अमृतलोकका आश्वास या तसल्ली मिलती है त्यों ही उसकी यह प्रार्थना और-सब प्रार्थनाओंके आगे बढ़ जाती है—'मा मा हिंसी:'। बचाओ मुझे बचाओ; रोजमर्राके हाथसे, छोटोंके हाथकी मारसे बचाओ मुझे। मैं बड़ा हूं; मुझे मौतके हाथसे, स्वार्थके हाथसे, 'मै-मै'के घमंडके हाथसे मुझे बचाके ले जाओ। हे परमात्मा, मेरा यह जीवन तुम्हारे उस परिपूर्ण प्रेममे जाना चाहता है; अपनेको टुकडोंमे खंड-खंड करके, रोजमर्रा अपने अहकारमे घूम-घूमकर मुझे कोई आनन्द नहीं मिल रहा है। मा मा हिंसी:, मुझे इस विनाशसे बचाओ।

इस संसारमे जिस प्रेमकी वदौलत इन्सानको अपनी सच्ची जगह मिलती है, दुनियाके सारे आदमियोंसे उसका सच्चा संबंध कायम होता है, उस परम प्रेमको पाये बगैर आदमी भला कैसे मुसीबतोंसे छुटकारा पा सकता है! दुनियाके दुःख-दर्दोंसे कौन उसे बचा सकता है? आपसी मुहब्बतके बिना आदमीपर चारों तरफसे बार-बार मुसीबते आयेंगी ही आयेंगी, पापकी आग उसे जलाकर मारेगी ही मारेगी। इसीसे, दुनियाकी सब पुकारोंपर

उसकी और-एक पुकार बराबर जागती रहती है—"हे अनन्त, तुम अपने भीतरसे सारे संसारके साथ मेरा जो नित्य-सम्बन्ध है, उस सम्बन्धमें मुझे बाँधो, तभी मृत्युके भीतरसे मै अमृतमे पहुच सकूंगा।"

'पिता नो बोधि।' पिता, तुम मुझे बोध दो, समझ दो। तुम्हारी याद करके अपने मनको हम नम्र करते हैं। रोजमर्राका ओछापन हमें उद्दंडताकी ओर खींच ले जाता है। तुम्हारे चरणोंके पास जाकर हम अपने अहंकारको बिलकुल भूल जाते हैं। अपनी इस छोटी-सी हदमे मैं 'बड़ा' होता चला जा रहा हूं और कदम कदमपर दूसरोंको चोट पहुंचा रहा हूं। मुझे तुम हरा दो अपने प्रेमसे। आदमी होकर आदमीसे प्रेम करूं, सबसे बडी जीत तो इसीमे है। हे परमलोकके पिता, घड़ी-घड़ीकी इस मौनके अन्दर मुझे न डाले रखो; हे अनन्त, प्रेमसे भक्तिसे अवनत होकर मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं, और उसी नमस्कारसे ही मैं बच जाता हूं। नहीं तो दुःख मुझे पाना ही पड़ेगा, वासनाकी चोटें मुझे सहनी ही पड़ेंगी, अहंकारका पीड़न मेरे इस जीवनको प्रतिदिन भार-ग्रस्त बनाता ही रहेगा। जब तक मैं क्षुद्रताकी सीमामें आबद्ध हूं, जब तक अपने ओछेपनकी चहारदीवारीके अन्दर मैं कैद हूं, तब तक मेरे पाप इकट्ठे हो-होकर विकट मूर्ति धारण करके मेरे चारों तरफकी आब-हवाको विभीषिकामय करते ही रहेंगे, और उसकी लपटोंसे मैं जलता ही रहूंगा। इसलिए हे पिता, मुझे समझ दो। 'पिता नो बोधि।'

सारे यूरोपमें आज और-एक महायुद्धकी आँधी उठ रही है।

कितने दिनोंसे इस आँधीके लिए गुप्तरूपसे तैयारियाँ चल रही है, कौन कह सकता है! बहुत दिनोंसे आदमीने जो अपने अन्दर अपनेको खूब जोरसे बाँध रखा है, अपने जातीय या राष्ट्रीय अहंकारको वह जो प्रचंडसे प्रचंडतर करता ही चला जा रहा है, उसकी यह बाँधी हुई कैद और घमंडकी प्रचंडता किसी-न-किसी दिन अपने-आपको ही चीड-फाड़कर खतम कर देगी। इतिहास इसका गवाह है। एक-एक राष्ट्रने अपने-अपने गौरवमे फूलकर काफी उद्दण्डताके साथ अपनेको सबसे बढ़कर ताकतवर बना डालनेकी भरपूर कोशिश की है; वर्म-चर्म और अस्त्र-शस्त्रसे लैस होकर हमेशा अपनेको दूसरोंसे ज्यादा शक्तिशाली बनानेके लिए अपनी-अपनी तलवारोंपर लगातार शानदार सान चढाई है। और शान्ति-परिषद (पीस कान्फ्रेन्स) कायम करके अमन कायम करनेकी भी कोशिशें हुई हैं; लेकिन सर्वत्र बार-बार यही देखनेमे आया है कि बराबर तरह-तरहके तरीके निकाल-निकालकर तरह-तरहकी चालबाजियोंसे उस मारको, सिर्फ सहारेसे, थोडी देरके लिए रोकनेकी ही कोशिश हुई है। मगर हम भूलते है। किसी राजनीतिक चालसे क्या मरना रोका जा सकता है? यहाँ तो इन्सानके गुनाहोंका ढेर लग गया है, पापोंका स्तूप खडा हो गया है। पाप ही तो हमे मारेगा; और मारकर अपना परिचय देगा! क्या पापको हम तभी पहचानेंगे जब मर मिटेंगे? हाय हाय, हम कब समझेंगे कि उस मारसे बचनेके लिए हमे कहना ही होगा—"मा मा हिंसीः। पिता, तुमने अगर समझ

इन्सानकी यह पुकार युद्धके गर्जनमे मुखरित होकर आज आसमानके टुकड़े-टुकड़े किये दे रही है।

स्वार्थके बंधनमें जर्जर होकर, राग-द्वेष-क्रोध-लोभ-मद-मात्सर्यकी चोटसे घायल होकर, यह जो हम सब मिलकर आपसमें एक दूसरेको चोट पहुंचा रहे है, चोट खा रहे हैं, वही प्रत्येक 'मै' का रोना-बिलखना ही तो आज एक भयंकर विश्वयज्ञमें सम्पूर्ण मानवजातिकी प्रार्थनाके रूपमे, रक्तस्रोतके साथ गरज रहा है, 'मा-मा हिंसीः।' -आदमी मर रहा है, बचाओ। उसे कौन बचायेगा ? 'पिता नोऽसि।' तुम जो हम सबके पिता हो, तुम बचाओ। तुम अपने बोधके द्वारा बचाओ, समझ देकर बचाओ। तुम्हे हम सब आदमी मिलकर जिस दिन नमस्कार करेंगे उसी दिन हमारा नमस्कार सच्चा होगा। नहीं तो, जमीनमे लोटपोट होकर मरते-मरते जो नमस्कार करना पड़ेगा ! उस मौतसे बचाओ। देश-देशान्तरमें तुम्हारी जितनी भी सन्ताने हैं, हे पिता, तुम प्रेममें भक्तिमें कल्याणमें सबको इकट्ठा करो अपने चरणोंके पास। हमारा नमस्कार सर्वत्र व्याप्त हो जाय। देशसे देशान्तरमे, एक जातिसे दूसरी जातिमे, एक राष्ट्रसे दूसरे राष्ट्रमें सर्वत्र व्याप्त हो जाय। 'विश्वानि दुरितानि परासुव।' विश्व-पापकी जो रक्त-मूर्ति आज दिखाई दी है, उस विश्वपापको दूर करो। मा मा हिंसीः। विनाशसे रक्षा करो, बरबादीसे बचाओ।

अकारादिक्रमिक सूची

[भाग १ से ६ तक]